CPHE

द्वितीय राष्ट्रीय स्वास्थ्य असैम्बली की ओर
पुस्तिका 7

आवश्यक दवाओं तक पहुँच

राष्ट्रीय समन्वय समिति,
जन स्वास्थ्य अभियान

SOCHARA
Community Health
Library and Information Centre (CLIC)
Centre for Public Health and Equity
No. 27, 1st Floor, 6th Cross, 1st Main,
1st Block, Koramangala, Bengaluru - 34
Tel : 080 - 41280009
email : clic@sochara.org / cphe@sochara.org
www.sochara.org

आवश्यक दवाओं तक पहुँच

द्वितीय राष्ट्रीय स्वास्थ्य असेम्बली की ओर
पुस्तिका 7

आवश्यक दवाओं तक पहुँच

प्रथम संस्करण : फरवरी, 2007

विकासकर्ता एवं प्रकाशक :

राष्ट्रीय समन्वय समिति, जन स्वास्थ्य अभियान

अभीस्वीकृतियाँ

डॉ. के सेतुरमन, अमिताव गुहा, डॉ. अनन्त फड़के,

डॉ. मीरा शिवा, डॉ. अनुराग भार्गव, चीनू श्रीवास्तव

ले-आउट और डिज़ाइन :

राजीव चौधरी

भावना सुमन और निवेदिता डेका

मुद्रक :

एकता प्रिन्टर्स, भोपाल, मो. नं. : 9893088422, 9300951235

राष्ट्रीय समन्वय समिति के सदस्य

* ऑल इंडिया पीपल्स साइंस नेटवर्क (एआईपीएसएन)
* ऑल इंडिया ड्रग एक्शन नेटवर्क (एआईडीएएन)
* एशियन कम्युनिटी हैल्थ एक्शन नेटवर्क (एसीएचएएन)
* ऑल इंडिया डैमोक्रेटिक वीमैन्स एसोसियशन (एआईडीडब्ल्यूए)
* एसोसिएशन फॉर इंडियाज़ डेवलममैन्ट (एआईडी इंडिया)
* भारत ज्ञान विज्ञान समिति (बीजीवीएस)
* ब्रैस्टफीडिंग प्रमोशन नेटवर्क ऑफ इंडिया (बीपीएनआई)
* कैथोलिक हैल्थ एसोसियशन ऑफ इंडिया (सीएचएआई)
* सैन्टर फॉर कम्युनिटी हैल्थ एण्ड सोशल मैडीसिन, जेएनयू
* क्रिश्चियन मेडिकल एसोसियशन ऑफ इंडिया (सीएमएआई)
* सोसायटी फॉर कम्युनिटी हैल्थ अवेयरनैस, रिसर्च एण्ड एक्शन (एसओसीएचएआरए)
* फोरम फॉर क्रैच एण्ड चाइल्ड केयर सर्विसेज़ (एफओआरसीईएस)
* फेडरेशन ऑफ मेडिकल रिप्रेज़ैन्टेटिव्स एसोसियशन्स ऑफ इंडिया (एफएमआरएआई)
* हैल्थ वॉच फोरम
* ज्वाइन्ट वीमैन्स प्रोग्राम (जेडब्ल्यूपी)
* मेडिको फ्रैन्डस सर्कल (एमएफसी)
* नेशनल अलायन्स ऑफ पीपल्स मूवमैन्ट्स (एनएपीएम)
* नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन वीमैन (एनएफआईडब्ल्यू)
* नेशनल एसोसियशन ऑफ वीमैन्स आर्गनाइजेशन्स (एनएडब्ल्यूओ)
* रामकृष्ण मिशन (आरके)
* सामा–रिसोर्स ग्रुप फॉर वीमैन एण्ड हैल्थ
* सपोर्ट फॉर एडवोकेसी एण्ड ट्रेनिंग इन हैल्थ इनीशिएटिव (एसएटीएचआई)
* वॉलियन्टरी हैल्थ एसोसिएशन ऑफ इंडिया (वीएचएआई)

सहभागी संगठन

उपरोक्त नेटवर्कों में से और इनके अतिरिक्त स्वास्थ्य रक्षा और स्वास्थ्य नीतियों के प्रति चिन्ता रखने वाले 1000 से अधिक संगठन, जन स्वास्थ्य अभियान आंदोलन में सहभागी संगठनों के रूप में जुड़े हैं।

जन स्वास्थ्य अभियान के बारे में

1978 में अल्मा–एटा में विश्व की अधिकतर सरकारों ने मिलकर अल्मा–एटा घोषणा–पत्र पर हस्ताक्षर किए जिसमें ''वर्ष 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य'' का वचन दिया गया था। हालांकि इस वचन को कभी भी गंभीरता से नहीं लिया गया और बाद की स्वास्थ्य नीतियों पर विचार विमर्श के दौरान इसे दरकिनार कर दिया गया।

वर्ष 2000 आते–आते ऐसा प्रतीत होने लगा था कि विश्वभर की सरकारों ने 'वर्ष 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य' को लगभग भुला दिया था। लोगों को इस भुला दी गई कटिबद्धता के बारे में स्मरण कराने के लिए दिसम्बर, 2000 में बांग्लादेश के सावर नगर में प्रथम जन स्वास्थ्य असैम्बली का आयोजन किया गया। जन स्वास्थ्य असैम्बली में विश्व के जन आंदोलन और अन्य गैर–सरकारी सामाजिक संगठन एक मंच पर सभी के लिए स्वास्थ्य की कटिबद्धता को दोहराने और सरकारों को इस वचन को गंभीरता से लेने के लिए बाध्य करने हेतु एकत्रित हुए। इस असैम्बली का उद्देश्य विश्वव्यापी एकजुटता विकसित करना और भूमंडलीयकरण की नीतियों के संदर्भ में लोगों के स्वास्थ्य में वृद्धि के क्षेत्र में काम कर रहे जन आंदोलनों और संगठनों को साथ लाना था।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य असैम्बली को आयोजित करने के लिए इक्ठ्ठे हुए राष्ट्रीय नेटवर्कों और संगठनों ने इस आंदोलन को जन स्वास्थ्य अभियान के रूप में जारी रखने का निर्णय लिया। जन स्वास्थ्य अभियान विश्व के पीपल्स हैल्थ मूवमैन्ट आंदोलन का भारतीय क्षेत्रीय खण्ड है।

चिकित्सा क्षेत्र में उन्नति और मानव जीवन की औसत आयु में बढ़ोत्तरी के बावजूद भी दुनिया में लोगों के स्वास्थ्य की स्थिति में बढ़ती हुई असमानताओं के साक्ष्य मौजूद हैं। निर्धनता का सामना करने और इसके अतिरिक्त एचआईवी/एड्स जैसे संचारी रोगों के दोबारा फैलने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों के कमजोर होने के कारण पूर्व में स्वास्थ्य रक्षा के क्षेत्र में प्राप्त परिणामों में कमी आई है। लोगों की आय में बढ़ते अंतर, सामाजिक सेवाओं तक कम पहुँच और जातीय और जैन्डर के आधार पर असमानताओं के कारण ऐसा हुआ है। ज्ञान और चिकित्सा की पारंपरिक प्रणालियाँ आज खतरे में हैं।

यह सभी रूझान मुख्य रूप से विश्व अर्थव्यवस्था की असमान संरचना के कारण उत्पन्न हुए हैं जिसमें संरचनात्मक फेर–बदल करने की

नीतियों, विश्व के दक्षिणी देशों के लगातार कर्जदार बने रहने, अनुचित विश्व व्यापार व्यवस्थाओं और अनियंत्रित वित्तीय प्रबंधन के कारण और अधिक जटिलतायें पैदा हुई हैं। उपरोक्त सभी परिस्थितियाँ असमान भूमंडलीयकरण की तरफ तेजी से बढ़ती घटनाओं का अंग हैं। बहुत से देशों में सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय एजेन्सियों के बीच समन्वय की कमी और घटते या स्थिर रहे सार्वजनिक स्वास्थ्य पर व्यय के कारण यह समस्यायें और भी बढ़ गई हैं। स्वास्थ्य क्षेत्र में पहले से निर्धारित प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल नीतियों को लागू करने में विफलता के कारण विश्व में स्वास्थ्य पर खतरे में बढ़ोत्तरी हुई है। इन विफलताओं में निम्नलिखित सम्मिलित हैं :

- व्यापक स्वास्थ्य देखभाल सेवायें प्रदान करने के लक्ष्य से पीछे हटा गया है।
- समुदायों को उनके अपने स्वास्थ्य के विकास कार्यों में सहभागी बनाने में विफलता रही है।
- स्वास्थ्य समस्याओं की अंतरक्षेत्रीय प्रगति के बारे में समझ की कमी और समाज के सभी क्षेत्रों में स्वास्थ्य को प्राथमिकता देने में विफलता।
- स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण की नीतियों के कारण सभी स्तरों पर राज्य के उत्तरदायित्व में कमी।
- स्वास्थ्य विषय पर संकीर्ण और अधिक तकनीकी रूप से ध्यान दिया जाना और इसे मानवाधिकार की अपेक्षा उपभोग की वस्तु के रूप में अधिक देखा जाना।
- इन्हीं सब विचारों को ध्यान में रखते हुए जन स्वास्थ्य अभियान के सहयोगी संगठनों ने मिलकर इस आंदोलन को आरंभ करने का निर्णय लिया जो जन स्वास्थ्य असैम्बली की प्रक्रिया का परिणाम था। इस गठजोड़ द्वारा स्वयं के लिए निर्धारित कुछ लक्ष्यों को संक्षेप में इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है:
- जन स्वास्थ्य अभियान भूमंडलीयकरण की असमान नीतियों के कारण भारतीय लोगों, विशेषकर निर्धनों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले विपरीत प्रभावों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है।
- जन स्वास्थ्य अभियान लोगों का ध्यान वर्ष 2000 पूरा होने के बाद भी 'वर्ष 2000 तक सभी के लिए स्वास्थ्य' के वचन को पूरा न किए जाने की ओर आकर्षित करना चाहता है। इस ऐतिहासिक घोषणा को पुनः दोहराते हुए आगे ले जाने व इसके लिए 'सभी के लिए स्वास्थ्य – और अभी' की घोषणा करने की आवश्यकता है। इस अभियान के अंतर्गत

स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य रक्षा के अधिकार को मौलिक मानवाधिकार बनाया जाना चाहिए। स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय नीति–निर्माण के क्षेत्र में स्वास्थ्य और समान विकास को पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है और इन प्राथमिकताओं को प्राप्त करने के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल को मुख्य कार्ययोजना के रूप में अपनाया जाना चाहिए।

- भारत में भूमंडलीयकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप निजीकरण किए जाने और दोषपूर्ण नियामन पद्धतियों के साथ राज्यों के स्वास्थ्य रक्षा क्षेत्र से पीछे हटने के कारण चिकित्सा क्षेत्र का वाणिज्यिकरण हो रहा है। इस समय अनुपयुक्त, अनैतिक और शोषणकारी चिकित्सा पद्धतियाँ फल–फूल रही हैं। जन स्वास्थ्य अभियान इस तरह के वाणिज्यिकरण को नियंत्रित करने तथा स्वास्थ्य देखभाल के लिए न्यूनतम मानकों और उचित चिकित्सा के दिशा–निर्देशों को लागू करने पर बल देता है।
- भारतीय संदर्भ में स्वास्थ्य देखभाल की ऊपर से नीचे की ओर नौकरशाही से प्रभावित और विखंडित तकनीकी कार्यप्रणाली के कारण पहले से ही कम उपलब्ध बहुमूल्य संसाधनों का अपव्यय हुआ है। इस तरह की कार्यप्रणाली स्वास्थ्य में उल्लेखनीय सुधार लाने में भी विफल रही है। जन स्वास्थ्य अभियान स्वास्थ्य रक्षा कार्यों के विकेन्द्रीयकरण की तुरन्त आवश्यकता पर बल देता है और ऐसी एकीकृत, व्यापक और सहभागितापूर्ण स्वास्थ्य रक्षा प्रणाली को लागू करने पर बल देता है जिसमें 'लोगों का स्वास्थ्य स्वयं लोगों के हाथ में हो'।

जन स्वास्थ्य अभियान लोगों के स्वास्थ्य को बढ़ाने के इच्छुक सभी लोगों के साथ कार्य करने की इच्छा रखता है। यह स्वास्थ्य समस्याओं के दीर्घकालिक हल खोजने के साथ–साथ निर्धन लोगों की सहायता और समाज के उपेक्षित वर्गों को संगठित होकर बेहतर स्वास्थ्य सेवायें प्रदान करने के लिए अनेक प्रयास करना चाहता है।

जन स्वास्थ्य अभियान का समन्वय राष्ट्रीय समन्वय समिति द्वारा किया जा रहा है जिसमें जन आंदोलनों के प्रमुख 21 अखिल भारतीय नेटवर्क और गैर–सरकारी संगठन शामिल हैं। यह पुस्तिका राष्ट्रीय समन्वय समिति द्वारा द्वितीय राष्ट्रीय स्वास्थ्य असैम्बली के लिए प्रकाशित पुस्तिकाओं की श्रृंखला में छठी पुस्तक है।

विषय-वस्तु

भाग 1 09
उचित चिकित्सीय देखभाल

भाग 2 24
भारत में दवा उद्योग

संलग्नक 41
महाराष्ट्र में सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं में आवश्यक दवाओं की उपलब्धता के बारे में केस स्टडी

संलग्नक 44
कोलकाता घोषणा–पत्र : दवा उद्योग की नीतियों और आवश्यक दवाओं तक पहुँच पर कोलकाता में 16–17 अप्रैल, 2005 को आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार के दौरान अपनाया गया घोषणा–पत्र

आवश्यक दवाओं तक पहुँच

भाग 1
उचित चिकित्सीय देखभाल

परिचय

`कोई चिकित्सक यदि ज्ञान का दीपक और समझबूझ लेकर रोगी के शरीर की जाँच करने में विफल रहता है तो वह कभी भी रोगों का उचित उपचार नहीं कर सकता`
- चरक संहिता (120-162 ई0)

पिछले वर्ष भारतीय लोगों ने दवायें खरीदने के लिए 25 हजार करोड़ रुपयों से अधिक की राशि का व्यय किया और संभवतः रोग निदान जाँच और शल्य क्रियाओं के लिए भी इतना ही भुगतान किया। कुल मिलाकर यह राशि लगभग 40 हजार करोड़ रुपये होती है या इसे यदि अन्य शब्दों में कहा जाए तो देश में प्रत्येक परिवार के लिए 2000 रुपये का खर्च किया गया। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि इस खर्च में से कम से कम 50% राशि अनुपयुक्त या अनावश्यक दवाओं, रोग निदान जाँच व शल्य प्रक्रियाओं पर खर्च की गईं। कुल मिलाकर इस कारण हर वर्ष लगभग 15 हजार से 20 हजार करोड़ रुपयों का व्यर्थ खर्च किया जाता है जिसके कारण देश के प्रत्येक परिवार पर हर वर्ष लगभग 1000 रुपयों का अनावश्यक बोझ पड़ता है।

दुर्भाग्यवश अनावश्यक दवाओं का प्रयोग दहेज जैसी सामाजिक बुराई की तरह है जिसका पता लगाना तो आसान है परन्तु अलग–अलग मामलों में इसे निर्धारित कर पाना कठिन है जो मानवीय उपेक्षा के कारण और अधिक बढ़ जाती है और जिसे पूरी तरह समाप्त कर पाना कठिन है। यदि इसे जारी रहने दिया गया तो इसके घातक परिणाम हो सकते हैं। सभी सामाजिक बुराईयों की तरह इसके लिए भी अनेक कारण उत्तरदायी हैं और यदि स्वास्थ्य देखभाल में अनावश्यक प्रक्रियाओं को रोकना है तो इसके लिए सभी प्रमुख विषयों के हल खोजे जाने चाहिए।

अनावश्यक दवायें देना

स्वास्थ्य देखभाल प्रक्रिया में अनावश्यक और अनुपयुक्त पद्धतियों में

से सबसे प्रथम और अधिक जानी पहचानी प्रक्रिया अनावश्यक दवायें देने की है। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अनावश्यक दवायें देने को इस प्रकार परिभाषित किया है कि स्वास्थ्य लाभ की वस्तुओं का प्रयोग जिनसे अपेक्षित लाभ बहुत कम या नगण्य हों और इनका प्रयोग करना इनकी लागत या इनसे होने वाले नुकसान से अधिक न हो।

गलत, अनावश्यक, आवश्यकता से अधिक या अपर्याप्त दवायें देने पर अनुचित दवा देने की घटनायें घटित हो सकती है। इसलिए अनुचित दवायें देने को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :

- **गलत दवायें लिखना :** इसका अर्थ है कि किसी रोग के उपचार के लिए गलत दवाओं का प्रयोग या फिर दवाओं की आवश्यकता न होने पर दवायें देना।
- **अनुपयुक्त दवायें देना :** इसका अर्थ ऐसी दवाओं के प्रयोग से है जो किसी विशेष रोगी के लिए लाभप्रद न हों जैसे कि गर्भवती महिलाओं, बच्चों व बूढ़े लोगों को नुकसान पहुँचा सकने वाली दवाओं का प्रयोग।
- **आवश्यकता से अधिक दवायें देना :** किसी रोग का उपचार करने के लिए बहुत सी अलग तरह की दवायें दी जाती हैं जबकि केवल कुछ या एक ही दवा से भी काम चल सकता है। इसमें लंबे समय तक दवाओं का प्रयोग भी शामिल है जबकि कम समय में दवायें देकर भी पर्याप्त उपचार किया जा सकता हो।
- **एक से अधिक प्रकार की दवायें देना :** इसका अर्थ है किसी रोग के उपचार के लिए एक ही प्रकार की एक से अधिक दवायें देना (अर्थात ऐसी दवायें देना जिसका प्रभाव एक समान हो)।
- **आवश्यकता से कम दवायें देना :** इसमें बहुत कम समय के लिए या अपर्याप्त मात्रा में दवायें देना शामिल है।

अनावश्यक और लाभहीन दवाओं के प्रयोग में वृद्धि

भारत में इस प्रकार अनावश्यक दवायें देने की प्रक्रिया बहुत अधिक व्याप्त है और इसके अनेक कारण हैं। इसका एक कारण यह है कि भारतीय बाज़ारों में बड़ी संख्या में ऐसी दवायें उपलब्ध हो गई हैं जो अनावश्यक या लाभहीन होती हैं। विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में तेजी से बढ़ोत्तरी के कारण बाज़ार में उपलब्ध दवाओं की संख्या में विस्फोट सा हुआ है। दुर्भाग्य से बाज़ार में आने वाली कुछ ही दवायें पहले से उपलब्ध दवाओं की अपेक्षा अधिक लाभप्रद होती हैं। अमरीका में किए गए एक अध्ययन से पता चला कि 1981–1988 के बीच अमरीका की 25 बड़ी दवा कंपनियों द्वारा बाज़ार में

उतारी गई 348 नई दवाओं में से केवल 3% ने वर्तमान चिकित्सा प्रणालियों पर अत्यधिक प्रभाव डाला, 13% ने कुछ प्रभाव डाला और 84% दवाओं ने लगभग न के बराबर प्रभाव डाला। 1975 से 1984 के बीच विपणन की गई 508 नई दवाओं के बारे में फ्रांस में किए गए एक अध्ययन से पता चला कि 70% दवाओं का पहले से विद्यमान दवाओं से अधिक प्रभाव नहीं पड़ा था। भारत में भी स्थिति इससे भिन्न नहीं है बल्कि यह और अधिक खराब ही है क्योंकि हमारे यहाँ दवा नियंत्रण प्रणालियाँ विकसित देशों की अपेक्षा बहुत अधिक कमजोर हैं। भारत में इस प्रकार के अध्ययन उपलब्ध न होने का कारण यह है कि भारत में अनावश्यक या नुकसानदायक दवाओं के प्रयोग की मॉनीटरिंग करने की कोई प्रक्रिया लागू नहीं है।

इसके परिणामस्वरूप ऐसा अनुमान है कि भारत में विभिन्न दवाओं के लगभग 60–80 हजार अलग–अलग ब्रांड उपलब्ध हैं। वहीं दूसरी ओर विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 270 से कुछ अधिक दवाओं की सूची तैयार की है जो किसी भी देश की 95% से अधिक जनसंख्या की स्वास्थ्य समस्याओं का निराकरण कर सकती हैं। इस प्रकार की अत्यधिक अराजकता की स्थिति में पहले से ही दबाव में काम कर रहे दवा नियंत्रण प्राधिकरणों द्वारा अपना उत्तरदायित्व पूरा कर पाना लगभग असंभव हो जाता है। बाज़ार में उपलब्ध इन लगभग 80 हजार उत्पादों में से अधिकतर उत्पाद या तो नुकसानदायक, अनावश्यक या लाभहीन हैं।

देश में इस तरह की स्थिति उत्पन्न होने के लिए दवा कंपनियाँ और सरकारी नियामक निकाय समान रूप से दोषी हैं। परन्तु यह सभी स्थितियाँ चिकित्सकों के सक्रिय सहयोग के बिना संभव नहीं हो सकती जो ऐसी अनावश्यक और लाभहीन दवायें रोगियों के लिए लिखते हैं। इसका एक कारण यह है कि देश में दवाओं की उपलब्धता के बारे में नियमित और पक्षपातरहित जानकारी का कोई स्रोत नहीं है। चिकित्सा पद्धतियों में तेजी से आ रहे बदलावों और अनेक प्रकार की नई दवाओं के बाजार में आने के कारण चिकित्सकों को नियमित आधार पर अपने ज्ञान में बढ़ोत्तरी करनी चाहिए। हमारे देश में लगातार चिकित्सीय शिक्षा ग्रहण करते रहने की ऐसी प्रणाली उपलब्ध नहीं है और अधिकांश चिकित्सक अपनी व्यस्त दिनचर्या में से नवीनतम पुस्तकें और प्रकाशन पढ़ने के लिए समय निकालना आवश्यक नहीं समझते। इसलिए हमारे यहाँ अधिकांश चिकित्सक दवा कंपनियों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली विपणन सामग्रियों पर ही निर्भर करते हैं जो उन्हें केवल उत्पादों की बिक्री बढ़ाने के उद्देश्य से अधूरी जानकारियाँ देती हैं। इसलिए बड़ी संख्या में अनावश्यक और अनुपयुक्त दवाओं की बिक्री संभव हो पाती है।

कुछ अनुपयुक्त और लाभहीन या नुकसानदायक सामान्य दवाओं की जानकारी नीचे दी गई है। यहाँ यह देखना आवश्यक है कि यह सूची केवल उदाहरण के लिए दी गई है और सीमित है। इस सूची में दिए गए उदाहरणों के अलावा भी अनेक और उदाहरण विद्यमान हैं :

दवा प्रचारक

__एनल्ज़िन__ : इस दवा से एग्रैनुलोसाइटॉसिस नामक रक्त का घातक रोग हो सकता है। इस दवा से शरीर पर चकत्ते पड़ सकते हैं या सैरीब्रल कोमा होने के कारण जीवन संकट में पड़ सकता है। अत्यधिक मात्रा में यह दवा लेने से रीनल ट्यूबुलर नेक्रोसिस नामक गुर्दो का रोग हो सकता है। भारत में रोग के छोटे से छोटे मामलों में एनल्ज़िन का प्रयोग किया जाता है और बिना डॉक्टर की पर्ची के भी इसे अधिकांश दवा विक्रेताओं से प्राप्त किया जा सकता है।

__क्लियोक्यूकुनॉल__ : क्लियोक्यूकुनॉल दवा हैलोजिनेटेड हाइड्रोक्सिक्युनोलिन दवाओं के समूह से संबंध रखती है। 60 के दशक में इस दवा को सीमोन नामक महामारी के प्रसार के लिए उत्तरदायी माना गया था जिसमें आगे चलकर मॉसपेशियों में कमजोरी आती है, तंत्रिकायें कमजोर होती हैं और दृष्टिहीनता उत्पन्न होती है। इस कारण से बहुत से देशों में इस दवा पर प्रतिबंध लगा दिया गया था और इसकी वास्तविक निर्माता कंपनी सीबा–गायगी ने इसे बाज़ार से हटा लिया था। परन्तु भारत में अब भी यह दवा एंट्रोक्युनोल जैसे अनेक ब्रांड नामों से उपलब्ध है।

__ओरल रिहाइड्रेशन सॉल्ट या जीवन रक्षक घोल__ : जीवन रक्षक घोल निश्चित अनुपात में सोडियम क्लोराइड, सोडियम बाईकार्बोनेट या ट्राइसोडियम साइट्रेट, पोटाशियम क्लोराइड और ग्लूकोज़ का मिश्रण होता है। इस घोल का प्रयोग तीव्र दस्तरोग के कारण शरीर में पानी की कमी को पूरा करने के लिए किया जाता है। शरीर में पानी की कमी एक ऐसी स्थिति है जिससे हर वर्ष तीसरी दुनिया के देशों में लाखों लोगों (विशेषकर बच्चों) की मृत्यु होती है। यूनीसेफ के अनुमानों के अनुसार जीवन रक्षक घोल के उचित प्रयोग से आज तीसरी दुनिया के देशों में हर वर्ष लगभग 10 लाख लोगों के

जीवन को बचाना संभव हो पा रहा है। इस उत्पाद के इतने महत्व के बाद भी भारत में जीवन रक्षक घोल की गुणवत्ता के मानकों कों कड़ाई से लागू नहीं किया जाता। बाजार में जीवन रक्षक घोल के अनेक ऐसे ब्रांड उपलब्ध हैं जो विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा सुझाये फार्मूले के अनुसार तैयार नही किए जाते। ऐसे अधिकतर जीवन रक्षक घोल उत्पादों में सोडियम की मात्रा बहुत कम और ग्लूकोज़ की मात्रा अधिक होती है। अधिक मात्रा में ग्लूकोज़ लेने से दस्त के रोगी की स्थिति और अधिक गंभीर हो सकती है और घोल में कम मात्रा में नमक होने से शरीर में नमक की कमी पूरी नहीं हो पाती जोकि शरीर में पांनी की कमी के कारण होने वाली मृत्यु का मुख्य कारण होता है। इसलिए इस प्रकार के घोल वास्तव में जीवन रक्षा न कर जीवन को और अधिक संकट में डाल देते हैं। यहाँ तक कि बाजार में उपलब्ध इलैक्ट्रॉल नामक मुख्य उत्पाद भी विश्व स्वास्थ्य संगठन के फार्मूले के अनुसार नहीं होता।

निश्चित मात्राओं की दवाओं का मिश्रण : भारतीय बाजार में दवाओं की अत्यधिक उपलब्धता का एक मुख्य कारण बड़ी संख्या में निश्चित मात्रा में मिश्रित दवाओं की उपलब्धता है जिसमें निश्चित अनुपात में दो या अधिक दवायें मिलाई जाती हैं। इनमें से अधिकांश मिश्रित दवाओं से कोई विशेष लाभ नहीं होता और इन्हें बेचने का एकमात्र उद्देश्य केवल लाभ कमाना होता है। इस संदर्भ में विश्व स्वास्थ्य संगठन का कहना है कि, "अधिकांश मामलों में आवश्यक दवाओं में केवल एक ही रसायनिक सम्मिश्रण का प्रयोग किया जाना चाहिए। निश्चित अनुपात में एक से अधिक दवाओं के मिश्रण तभी स्वीकार्य होने चाहिए जब इनमें प्रयुक्त प्रत्येक दवा लक्षित जनसंख्या समूहों की आवश्यकता को पूरा करती हो और जब ऐसी मिश्रित दवाओं से सुरक्षा और उपचार की दृष्टि से एक ही रसायन से बनी दवाओं को अलग–अलग देने से अधिक लाभ मिलता हो"। (विश्व स्वास्थ्य संगठन की तकनीकी रिपोर्ट, श्रृंखला 722) विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 270 आवश्यक दवाओं की सूची में ऐसी केवल 7 दवायें सम्मिलित की गई हैं।

सभी दवाओं को लाभप्रद ज़हर की संज्ञा दी जा सकती है। निश्चित अनुपात में दवाओं के मिश्रण से तैयार दवायें रोगी पर अनावश्यक विपरीत प्रभावों का अतिरिक्त बोझ डालती हैं और साथ ही साथ इनसे उपचार का खर्च भी बढ़ जाता है – अंत में किए गए आंकलन ने इस प्रकार की दवायें दवा निर्माता के अतिरिक्त किसी को लाभ नहीं पहुँचाती। इस परिप्रेक्ष्य में ऐसी मिश्रित दवाओं की आवश्यकता की जाँच करने और इन्हें भारतीय बाजारों से निकाल बाहर करने की जरूरत है। केवल इस एक ही कदम से भारतीय दवा बाजार में फैली अराज़कता बहुत हद तक समाप्त हो जाएगी। बाज़ार में से तुरन्त हटाये जाने योग्य कुछ दवाओं के सम्मिश्रण में निम्नलिखित शामिल हैं :

अनावश्यक खाँसी की दवायें : बाजार में खाँसी की अनेक दवायें उपलब्ध हैं जिनमें से अधिकाश अनावश्यक होती हैं। इनमें से बहुत सी दवाओं में खाँसी को रोकने की दवा और बलगम निकालने में सहायक दवा का मिश्रण होता है। इसके अतिरिक्त खाँसी की दवायें खाँसी को रोकने में बहुत कम प्रभावी होती हैं और केवल कुछ ही परिस्थितियों में इनके प्रयोग को उचित ठहराया जा सकता है। ब्रिटेन में दवाओं के फार्मूले तैयार करने के प्राधिकरण ब्रिटिश नेशनल फार्मुलरी का विचार है कि : ''खाँसी के उपचार के लिए खाँसी की दवा के लाभ कभी–कभी ही इन दवाओं के दुष्प्रभावों से अधिक होते हैं। बहुत कम परिस्थितियों में यह दवायें उपयोगी होती हैं। उदाहरण के लिए यदि सोते समय सूखी खाँसी आने के कारण नींद में ख़लल पड़ता हो तो खाँसी को दबाने वाली दवा के कारण बलगम गले में ही रह जाती है और यह स्थिति ब्रान्काइटिस के पुराने रोगियों के लिए हानिकारक हो सकती है''। इसलिए खाँसी की दवायें न केवल इसलिए अनावश्यक हैं क्योंकि उनसे उपचार के उद्देश्यों में रूकावट पैदा होती है बल्कि इसमें भी संदेह है कि उनमें प्रयोग किए गए तत्व ऐसे लाभ प्रदान करने में सक्षम हैं – खाँसी को दबाने या बलगम निकालने – जिनके लिए इनका प्रयोग किया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में खाँसी की सभी मिश्रित दवाओं की आवश्यकता की पुनरीक्षा होनी चाहिए।

एंटीबॉयोटिक दवाओं के मिश्रण : दो अलग–अलग प्रकार की एंटीबॉयोटिक दवाओं के बहुत से मिश्रण बाज़ार में उपलब्ध हैं। इनमें से दो प्रकार के मिश्रण उपचार की दृष्टि से आवश्यक हैं – ट्राईमैथोप्रिम और सल्फामैथॉक्साज़ोल के मिश्रण के रूप में को–ट्राईमॉक्साज़ोल और टीबी रोग के उपचार के लिए दवाओं का मिश्रण। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा तैयार आवश्यक दवाओं की सूची में केवल इन्हीं दो मिश्रणों को स्थान दिया गया है। अधिकांश मिश्रित दवाओं से इनमें प्रयुक्त पदार्थों से होने वाले दुष्प्रभावों का खतरा बना रहता है। एंटीबॉयोटिक दवाओं के मामलों में तो यह खतरा और भी अधिक हो जाता है क्योंकि एक तो इन दवाओं के दुष्प्रभाव बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं, दूसरे इन मिश्रणों के कारण कीमत में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है और तीसरे इन दवाओं को लेने से एंटीबॉयोटिक दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित होने का खतरा बना रहता है। बाज़ार में सामान्य रूप से उपलब्ध मिश्रित एंटीबॉयोटिक दवाओं में क्लॉक्सासिलिन और एमॉक्सीसिलिन या एंपीसिलिन का मिश्रण शामिल है।

दवाओं के अन्य सम्मिश्रण : इनमें एक या अधिक प्रकार की दर्द निवारक दवाओं का मिश्रण या पाचन तंत्र में तेज़ाब बनने को रोकने वाली दवा और उल्टी रोकने वाली दवाओं का मिश्रण आदि शामिल हैं।

रोग निदान जाँच प्रक्रियाओं का विवेकपूर्ण प्रयोग

किसी भी प्रकार की रोग निदान जाँच का सुझाव देने से पहले चिकित्सक को चाहिए कि वह स्वयं से निम्नलिखित प्रश्न अवश्य करे:

क्या इस जाँच से मुझे:

रोग निदान करने या इसकी पुष्टि करने में सहायता मिलेगी,
अन्य किसी रोग निदान को गलत साबित किया जा सकेगा,
उपचार की मॉनीटरिंग हो सकेगी,
पूर्वानुमान लगाये जा सकेंगे, या
किसी रोग की जाँच हो सकेगी?

क्या इस रोगी में अनुमानित दोष:

किसी चिकित्सीय प्रमाण के बिना विद्यमान हो सकते हैं?
यदि ये विद्यमान हों तो क्या यह रोगी के लिए हानिकारक हैं?
क्या इनका उपचार या नियंत्रण हो सकता है?और
क्या यह रोगी को होने वाले कष्ट और खर्च को देखते हुए उचित हैं?

क्या इस जाँच के अतिरिक्त अन्य कोई कम खर्चीला और सुरक्षित विकल्प नहीं है ?

यदि ध्यानपूर्वक विचार करने के बाद इन सभी प्रश्नों का उत्तर न में मिले तो इस जाँच को कराने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। यदि इनमें से किसी भी प्रश्न का उत्तर हाँ हो तो उपलब्धता, पूर्वानुमान और खर्च को ध्यान में रखते हुए यह जाँच कराई जा सकती है।

अनावश्यक दवायें लिखना

यहाँ यह समझने की आवश्यकता है कि ये समस्या केवल अनावश्यक, लाभहीन या हानिकारक दवाओं के प्रश्न तक ही सीमित नहीं है। आवश्यक या जीवन रक्षक दवाओं का भी अनावश्यक प्रयोग हो सकता है। मुख्य समस्या दवाओं के अनावश्यक प्रयोग की है। इसलिए हम देखते हैं कि प्रायः हल्के–फुल्के संक्रमण के लिए भी महंगी एंटीबॉयोटिक दवायें प्रयोग की जाती हैं। इसके साथ–साथ इन दवाओं की खुराक भी गलत दी जाती है। इसके अतिरिक्त साधारण सी बीमारी के लिए बड़ी संख्या में दवायें लिख दी जाती हैं जबकि केवल एक या कुछ दवाओं से ही लाभ हो सकता है। बहुत से मामलों में जब चिकित्सक रोग निदान के बारे में पूरी तरह आश्वस्त नहीं होते तो वे सभी संभावनाओं के उपचार के लिए बड़ी संख्या में दवायें लिख देते हैं।

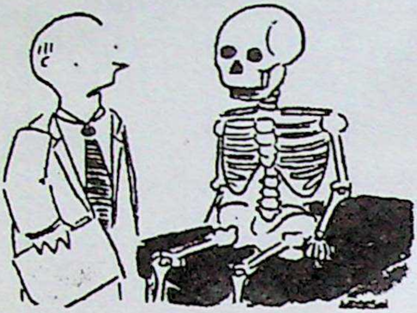

अभी भी निदान पक्का करने के लिए एक एक्स-रे कर लेते है।

इस प्रकार बुखार से पीड़ित किसी रोगी को कोई एंटीबॉयोटिक दवा, मलेरिया की दवा और टाइफॉयड के उपचार की दवा दे दी जाती है। संभव है कि बाद में पता चले कि रोगी केवल वॉयरल बुखार से ही पीड़ित था जिसका उपचार केवल पैरासीटामोल की कुछ गोलियों से संभव हो सकता था। इस तरह दवायें लिखने से रोगी के लिए उपचार का खर्च बढ़ जाता है, रोगी को संभावित दुष्प्रभावों का सामना करना पड़ता है और एंटीबॉयोटिक दवाओं के मामले में तो इससे दवाओं के प्रति प्रतिरोधक क्षमता बन सकती है अर्थात एक ऐसी स्थिति जब वास्तव में आवश्यकता होने पर एंटीबॉयोटिक दवायें कोई लाभ नहीं करती।

रोगियों को भी यह समझना चाहिए कि यदि कोई डॉक्टर कोई दवा न दें तो भी वह अधिक दवायें देने वाले किसी भी अन्य डॉक्टर के समान (कुछ मामलों में तो अधिक उपयोगी) बहुमूल्य सलाह ही देता है। सभी रोगों के उपचार के लिए दवाओं की आवश्यकता नहीं होती – वास्तविकता तो यह है कि बहुत से रोग स्वयं ही ठीक हो जाते हैं अर्थात शरीर में ऐसे रोगों को बिना दवाओं के ठीक करने की क्षमता होती है।

रोग निदान जाँच प्रक्रियाओं का उचित प्रयोग

दवाओं के अनावश्यक प्रयोग के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा को आधार बनाते हुए रोग निदान जाँच प्रक्रियाओं के अनावश्यक प्रयोग को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि "कोई भी जाँच प्रक्रिया (जिसमें प्रयोगशाला में खून, पेशाब, बलगम आदि की जाँच और एक्सरे या स्कैन आदि शामिल होते हैं) तब अनावश्यक होती है जब उससे अपेक्षित लाभ नगण्य या न के बराबर हों या ये लाभ उस जाँच से होने वाले नुकसान और उसके मूल्य क़ी तुलना में उचित न हों"।

जहाँ अनावश्यक दवाओं के प्रयोग के बारे में कुछ जागरूकता बनी है वहीं रोग निदान प्रक्रियाओं के अनावश्यक प्रयोग पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। यदि हम इस बात पर ध्यान दें कि एक अनावश्यक सीटी–स्कैन का मूल्य लगभग टॉनिक की 100 बोतलों के अनावश्यक प्रयोग के बराबर होता है तो हम रोग निदान जाँच प्रक्रियाओं के अनावश्यक प्रयोग को बेहतर

समझ पायेंगे। जाँच प्रक्रियाओं पर ध्यान न दिए जाने का एक कारण यह हो सकता है कि अधिकांश चिकित्सकों को केवल विशेष मामलों में अत्यधिक आवश्यकता होने पर ही रोग निदान जाँच कराने के बारे में जानकारी नहीं होती और वे जाँच न करवाने से लगने वाले आक्षेप से बचना चाहते हैं।

रोग निदान जाँच के खतरे, लागत और लाभ के बारे में 12 प्रश्न

यदि आप सूचित सहमति प्राप्त स्वास्थ्य सेवायें प्राप्त करना चाहते हों तो किसी भी प्रकार की जाँच प्रक्रिया करवाने से पूर्व अपने चिकित्सक के साथ निम्नलिखित बिन्दुओं पर चर्चा करें

1. मुझे वास्तव में क्या तकलीफ है?
2. यह रोग या परिस्थिति कितनी गंभीर है?
3. यदि मैं उपचार न कराऊँ, तो क्या होगा?
4. आप किस प्रकार की प्रक्रिया जाँच कराने जा रहे हैं?
5. क्या यह प्रक्रिया केवल रोग जाँच या उपचार या फिर दोनों कारणों से कराई जा रहीं है?
6. इस प्रक्रिया जाँच से क्या खतरे हो सकते हैं?
7. इस बात की कितनी संभावना है कि मुझे इस प्रक्रिया से लाभ होगा?
8. क्या यह लाभ दीर्घकालिक होगा या अल्पकालिक?
9. इस प्रक्रिया के स्थान पर अन्य क्या विकल्प या उपचार उपलब्ध हैं?
10. आपके विचार से मेरे लिये इनमें से कौनसा विकल्प श्रेष्ठ है?
11. यदि मेरी जगह आपका कोई संबंधी होता तो उसके लिए आप किस विकल्प को चुनते?(यदि प्रश्न 10 और 11 के उत्तर में अंतर हो तो कृपया इसके कारणों की समीक्षा कीजिए)
12. क्या आप इस रोग के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए कोई स्रोत सुझा सकते हैं?

वित्तीय कारणों से अनावश्यक उपचार पद्धतियों को बढ़ावा मिलता है

बर्नाड शॉ को उपचार की नैतिकताओं और वाणिज्यिक लाभ के बीच के चुनाव के धर्मसंकट में फंसे डॉक्टरों के काम करने और उनकी सोच के बारे में अचूक जानकारी थी। 1906 में उन्होंने 'डॉक्टर्स डायलिमा' नामक लेख पर प्रस्तावना में इस प्रकार लिखा था:

> "जहाँ तक डॉक्टरों के आदर और अंतरात्मा का प्रश्न है तो उनमें भी अन्य लोगों की तरह ही यह मौजूद होते हैं। जब अन्य लोग पक्षपाती न होने का ढोंग करें तो इसके पीछे अवश्य कोई स्पष्ट वित्तीय कारण

होते हैं''।

''वैज्ञानिक रूप से यह कहना या मानना सर्वथा अवैज्ञानिक होगा कि ऐसी परिस्थितियों में डॉक्टर अनावश्यक ऑपरेशन नहीं करते या उन्हें लाभ पहुँचाने वाले रोगों के उपचार को लंबे समय तक जारी नहीं रखते''।

निजी क्षेत्र में कार्यरत डॉक्टरों का विचार है कि, ''रोगी को अधिकतम ध्यान मिलने से वह प्रसन्न रहता है, हम अपनी फीस प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं और दवा उद्योग अपने अंशधारकों के लिए आय और धन अर्जित कर प्रसन्न होता है। यह स्थिति तो सभी के लिए विजय प्राप्त करने की स्थिति के समान है''। यह एक कुतर्क है और इसके लिए यह उत्तर दिया जा सकता है कि ''मादक पदार्थ बेचने वाला कोई व्यक्ति या वेश्याओं का दलाल भी इसी तर्क का प्रयोग कर यह कह सकता है कि यह सभी के लिए विजय प्राप्त करने की स्थिति के समान है तो क्या आप या समाज उस कथन को स्वीकार करेगा''?

एक कटु वास्तविकता यह है कि हमारे दो तिहाई ग्रामीण परिवार स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं पर किए जाने वाले खर्च के कारण ऋण के बोझ से दबे हैं। यदि ग्रामीणों के ऋण से दबे रहने की इस कड़ी को तोड़ना है तो योजनाकर्ताओं और स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को इस विषय पर सीधे विचार कर कोई दीर्घकालिक हल खोजना होगा। अंतरात्मा की आवाज को सुनने वाले किसी भी डॉक्टर के लिए यह नैतिकता की परीक्षा है जिसे दिशा–निर्देशों की तरह प्रयोग किया जा सकता है: ''क्या मैं स्वयं या अपने किसी संबंधी के साथ इस प्रकार के व्यवहार को पसन्द करूँगा''।

मरीज का ध्यान न रखने वाले या अनुचित उपचार करने वाले चिकित्सक की पहचानने के 8 सरल तरीके

आपके चिकित्सक द्वारा आपके उपचार के लिए उपयुक्त पद्धतियाँ न अपनाये जाने की सूचना देने वाले संकेत नीचे बताये गये हैं:

1. यदि चिकित्सक आपके द्वारा कही गई बात को ध्यान से न सुने।
2. आपके रोग के लक्षणों और शिकायतों की जाँच न करे।
3. आपका पूरी तरह से मुआयना न करे या उस अंग का मुआयना करना भूल जाए जिसके बारे में आपने अपने संदेह प्रकट किए हों।
4. चिकित्सक का व्यवहार अज़ीब प्रतीत हो, वह अनावश्यक मुस्कराये या जल्दी नाराज़ हो जाए।
5. जब चिकित्सक पितातुल्य व्यवहार करे और सब कुछ जानने का उपक्रम करे और आपको बताये कि आपके उपचार का यही एकमात्र तरीका है।

6. जब वह आपको आपके रोग के बारे में विवरण न दे और लिखी गई जाँच प्रक्रियाओं और उपचार का औचित्य न समझाये।

7. जब वह इन जाँच प्रक्रियाओं और दवाओं के लाभ और दुष्प्रभावों के बारे में आपसे चर्चा न करे।

8. यदि आप किसी अन्य चिकित्सक की राय लेने के विषय पर बात करें तो नाराज हो जाए या अपने निर्णय को उचित ठहराने का प्रयास करे।

ऐसी स्थिति में बेहतर होगा कि आप अपना चिकित्सक बदल लें और किसी अन्य अधिक सहयोगी चिकित्सक को दिखायें।

रोग के मामलों को छोड़ देने या उपचार हेतु ऐसे मामलों को जबरन पकड़ने से उचित उपचार की प्रक्रिया प्रभावित होती है।

लाभ कमाने के उद्देश्य से विभिन्न अस्पताल स्वास्थ्य देखभाल कार्यकर्ताओं, यातायातकर्मियों और दलालों को नियुक्त करते हैं ताकि वे शल्य क्रिया और अन्य प्रक्रियाओं के लिए रोगियों को उस अस्पताल तक लायें। इस प्रकार के दलालों को अन्य अस्पतालों में देखा जा सकता है जो संभावित ग्राहकों को 'बिना माँगे सहायता करने के लिए सलाह' देते दिखाई पड़ते हैं। इस व्यवस्था से परिचित निजी क्षेत्र में कार्यरत डॉक्टरों का कहना है कि 'अस्पताल में शल्य क्रिया के लिए भर्ती रोगियों को चिकित्सक की इच्छा के विरुद्ध अस्पताल से छुट्टी दिलाई जाती है और उसे अन्य अस्पताल में भर्ती करा दिया जाता है। इस काम में अस्पताल के कर्मचारियों की मिली–भगत रहती है और उन्हें इसके लिए अच्छा कमीशन दिया जाता है'।

निजी क्षेत्र के अस्पतालों में जिस प्रकार रोगियों को जबरन हड़पने की प्रक्रिया विद्यमान है वैसे ही सार्वजनिक क्षेत्र के अस्पतालों में रोगियों को छोड़ देने के मामले भी बड़ी संख्या में देखे जाते हैं। अमरीका में 2.5 लाख से अधिक आपातकालिक मामलों को निजी अस्पतालों से सरकारी अस्पतालों में इसलिए स्थानांतरित किया गया क्योंकि वे निजी अस्पतालों का खर्च वहन नहीं कर सकते थे। ऐसे रोगियों में से प्रत्येक 10 में से 1 रोगी अर्थात 25 हजार रोगियों की मृत्यु केवल एक अस्पताल से दूसरे अस्पताल ले जाने में हुई देरी के कारण हो गई (यह सूचना 1991 की लैन्सेट पत्रिका के अंक 337 के पृष्ठ 38 में छपी थी)। भारत में इस प्रकार अस्पतालों द्वारा रोगियों को छोड़ देने के मामलों की स्थिति और भी बदतर है।

रोगियों की नासमझी से नीम-हकीमों और धोखाधड़ी को बढ़ावा मिलता है

रोगी के नासमझ होने और चिकित्सक पर विश्वास करने को विभाजित करने वाली रेखा बहुत अस्पष्ट होती है। जब कोई बीमार हो तो

उसके उपचार के लिए 'कुछ करने' का दबाव बढ़ जाता है और इससे अप्रमाणित उपचार के तरीकों का प्रयोग करने को बढ़ावा मिलता है। विकसित देशों में भी स्वास्थ्य देखभाल कार्यों में अप्रमाणित उपचार या क्वैकरी एक बड़ा व्यवसाय है। इस प्रक्रिया को अनैतिक विज्ञापन, मीडिया में अनावश्यक चर्चा करने और लोगों की नासमझी के कारण बढ़ावा मिलता है। जब ऐसे 'चमत्कारिक उपचार' की वास्तविकता उजागर हो जाती है तो पणधारी अपना ध्यान स्वास्थ्य देखभाल व्यवसाय के हितों की रक्षा में लगाते हैं।

"मानव की स्वयं को भ्रमित कर पाने की क्षमता को कभी भी कम करके नहीं आंकना चाहिए : किसी विषय पर विश्वास से उसे देख पाने की क्षमता प्रभावित होती है। यदि आपको लगता है कि आप सही हैं और आप अपने रोगी को भी इस बारे में आश्वस्त कर सकते हैं तो इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि आप सही हैं अथवा नहीं"। (आर ऐशरः टॉकिंग सैन्स, पिटमैन मेडिकल पब्लिशर्स, 1972)

जानकार और जागरूक उपभोक्ताओं को चाहिए कि वे युगों पुरानी भ्रान्तियों और अंधविश्वासों की बेड़ियों को तोड़ दें। नासमझ उपभोक्ताओं के शोषण को रोकने के लिए स्वयंसेवी और उपभोक्ता कार्यकर्ताओं द्वारा तुरन्त हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता है। इस बारे में कुछ सुझाव इस प्रकार हैं :

क्वैक या नीम-हकीम क्यों सफल हो पाते हैं?

90% रोग स्वयं ही ठीक हो जाने वाले होते हैं और शरीर स्वयं ही इन्हें ठीक करने में सक्षम होता है (यहाँ तक कि साँप के काटने के 90% मामलों में भी ज़हर नहीं फैलता परन्तु यदि उपचार करने वाला नीम–हकीम चालाक हो तो वह इसके सफल उपचार का श्रेय ले सकता है)।

रोग के ठीक होने में सहायक अनेक कारणों में दवाओं और शल्य क्रिया से सफल उपचार केवल 20% मामलों में ही होता है। शेष 80% मामलों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

अ. प्लेसिबो या उपचार के लिए प्रयुक्त निष्क्रिय पदार्थों पर विश्वास

ब. उपचार प्रक्रिया, अस्पताल या चिकित्सक पर विश्वास

स. स्वयं में या अलौकिक शक्तियों पर विश्वास

यदि कोई चालाक नीमहकीम विश्वास पर आधारित उपचार के इन तरीकों का प्रयोग करे और उपयुक्त उपचार न भी करे तो भी वह अपने बहुत से रोगियों को ठीक कर पाने में सफल हो सकता है।

नीमहकीम के उपचार या धोखाधड़ी को पहचानने के दस संकेत

राजनीति की तरह स्वास्थ्य देखभाल का क्षेत्र भी बहुत से बेईमान

और धोखेबाजों का कार्यक्षेत्र बन गया है। इतिहास के एक प्रोफेसर जे.एच. यंग ने इस संबंध में निम्नलिखित दिशानिर्देश तैयार किए हैं :

1. रोगियों के डर का लाभ उठाना या चमत्कारिक उपचार देने की आशा जगाना।
2. चमत्कारिक वैज्ञानिक खोज का दावा करना।
3. पीड़ारहित सुरक्षित उपचार का वायदा कर, उपचार की संभावनायें जताना।
4. दूसरे रोगियों के अनुभवों और प्रमाणों का संदर्भ देना। पुराने रोगियों के अनुभवों में यथार्थ को उनकी राय या मात्र संयोग से अलग नहीं किया जाता।
5. अत्यधिक विज्ञापन कर उपचार को बढ़ावा देना।
6. रोगियों द्वारा उपचार प्राप्त करने के लिए अत्यधिक भुगतान करना।
7. साधारण वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का प्रयोग जिसमें सभी रोगों के लिए एक ही प्रकार का उपचार दिया जाता है। उदाहरण के लिए पानी ही सभी रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण है इसलिए हाइड्रोथैरेपी से यह सभी रोग ठीक हो सकते हैं।
8. 'वैज्ञानिक व्यवस्था का शिकार' होने का सिद्धान्त : "यह व्यवस्था पूरी तरह से अंधी है और मैं अपने समय से बहुत आगे हूँ और आने वाली पीढ़ियों के लिए मैं नायक सिद्ध होऊँगा"।
9. बदलती परिस्थितियों के अनुसार सिद्धान्तों में फेरबदल
10. 'सूचित सहमति की स्वतंत्रता' को बदलकर 'चुनाव की स्वतंत्रता' के रूप में प्रस्तुत करना जो अंत में 'मूर्ख बनने की स्वतंत्रता' बन कर रह जाती है।

संपूर्ण देखभाल से उपयुक्त उपचार को बढ़ावा मिलता है

संपूर्ण देखभाल या 'होलिस्टिक' उपचार आज बहुत अधिक प्रयोग में लाया जा रहा है। अलग–अलग लोग होलिस्टिक की अलग–अलग व्याख्यायें करते हैं। जैसा कि आज माना जा रहा है, होलिस्टिक या संपूर्ण देखभाल अनेक चिकित्सा पद्धतियों का मिश्रण नहीं है। हिपोक्रेट्स और चरक जैसे प्राचीन चिकित्सकों ने उपचार प्रक्रिया में सही मायनों में संपूर्ण देखभाल करने की बात कही है।

हिपोक्रेट्स ने कहा था, 'मैं किसी व्यक्ति को होने वाले किसी रोग को जानने की अपेक्षा यह जानना अधिक बेहतर समझता हूँ कि किस प्रकार के व्यक्ति को कोई रोग है'। इस बारे में जरा विचार करें। आज भी संपूर्ण

देखभाल के इस सरल परन्तु अचूक विचार में सुधार कर पाना कठिन है। रोग के लिए संपूर्ण देखभाल या उपचार प्रदान करने के दृष्टिकोण से रोगी व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व, जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण, ज्ञान और सामाजिक आर्थिक व सांस्कृतिक स्थिति को समझना चाहिए।

यदि उपचार पद्धतियों में ऐसी ही संपूर्ण देखभाल की विचार विद्यमान थी तो कब और किन परिस्थितियों में यह व्यवसाय इस प्रकार के अमानवीय व्यवसाय में परिवर्तित हो गया? चिकित्सा विज्ञान में प्रगति के साथ–साथ हम रोग के कारणों के बारे में और अधिक जान पाये – चिकित्सा और उपचार के क्षेत्र में क्रान्तिकारी खोज हुई और अत्यधिक प्रगति की गई।

अब हम व्यवहार विज्ञान की अपेक्षा जीव विज्ञान पर अधिक ध्यान देने लगे। चिकित्सा क्षेत्र में हुई प्रगति के कारण विशेषज्ञता प्राप्त करना आवश्यक हो गया। जैसा कि एक आलोचक ने कहा है कि 'विशेषज्ञ डॉक्टर कम से कम स्थितियों के बारे में तब तक अधिक से अधिक अध्ययन करते हैं जब तक कि वे कुछ नहीं के बारे में सब कुछ नहीं जान लेते'। इस प्रकार के विशेषज्ञ डॉक्टरों के लिए डॉक्टर के व्हाइट ने इग्नोरैन्ट सैवेन्ट परिभाषा तैयार की। ऐसे डॉक्टर अपने क्षेत्र में तो बहुत अधिक जानकारी रखते हैं परन्तु रोगी के जीवन और संसार के बारे में अनभिज्ञ होते हैं। टी एस इलिएट ने इसकी आलोचना करते हुए इस प्रकार कहा था : 'वह ज्ञान कहाँ है जो हमने इतनी सारी जानकारियों में खो दिया है?वह सूझ–बूझ कहाँ है जिसे हम इतना ज्ञान प्राप्त कर खो चुके हैं'?

प्राथमिक देखभाल से संपूर्ण देखभाल को बढ़ावा मिलता है

जिस प्रकार शरीर में पेट और आंतें भोजन को पचाने का जटिल परन्तु बिना चकाचौंध वाला कार्य करते हैं उसी प्रकार प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल देने वाले चिकित्सक का रोगी के बारे में दृष्टिकोण होना चाहिए और वह उसकी अनेक समस्याओं को हल करने में सक्षम हो। उपचारित विशिष्ट स्वास्थ्य समस्याओं को विशेषज्ञ द्वारा उपचार के लिए रैफर किया जाना चाहिए।

70 व 80 के दशक में अमरीका में बड़े पैमाने पर विशेषज्ञों द्वारा उपचार करने की प्रक्रिया आरंभ कीं गई। यह विशिष्ट रोगों पर ध्यान देने और उनके उपचार के लिए विशिष्ट प्रक्रियायें करने की पद्धति थी जो बहुत अधिक महंगी थी और शीघ्र ही जिसका नियंत्रण बीमा उद्योग के हाथ में आ गया। अब उस समाज ने अपनी भूल को पहचाना है और वह पुनः प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल की ओर लौट रहे हैं जो रोगी को ध्यान में रखते हुए संपूर्ण, लगातार और व्यापक उपचार प्रदान करती है। दुर्भाग्य से तीसरी दुनिया के देश अभी

भी इस दलदल में फंसे हुए हैं। केवल 'एमबीबीएस की डिग्री प्राप्त किसी चिकित्सक' को अपनी झिझक त्याग कर उचित प्राथमिक उपचार पद्धतियाँ अपनाने के लिए सशक्त करने से इस परिस्थिति को सुधारा जा सकता है।

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल चिकित्सकों को विकास करते हुए अपने रोगियों के लिए 'स्वास्थ्य देखभाल के पैरवीकार' बनने की आवश्यकता है। उन्हें चाहिए कि वह वर्तमान रूझानों को बदलें और रोगियों की सहायता करें ताकि वे विशेषज्ञों द्वारा उपचार की इस अनुपयुक्त प्रक्रिया से बचें – केवल इसलिए नहीं कि यह प्रक्रिया बहुत महंगी है बल्कि इसलिए भी क्योंकि इसमें अनावश्यक खतरे हैं और इसमें उचित और उपयुक्त तथा प्रभावी उपचार की ओर से ध्यान हट जाता है। (हार्ट जे.टी. : लैन्सेट 1992:340:772–775)

यहाँ निष्कर्ष यह निकलता है कि चिकित्सा का आधार लाभ कमाना या अत्यधिक तकनीकों का प्रयोग करना नहीं होना चाहिए बल्कि उपयुक्त उपचार चिकित्सक और रोगी के बीच विश्वास पर आधारित होना चाहिए। जैसाकि अमरीका में हुआ है, यदि यह परस्पर विश्वास समाप्त हो गया तो पूरी स्वास्थ्य देखभाल व्यवस्था ही खतरे पर पड़ जाएगी और इससे जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति इससे नुकसान उठायेगा। विश्वास ही इस पूरी व्यवस्था को एक साथ जोड़े रख सकता है। इसके बिना यह पूरी व्यवस्था ताश के पत्तों की तरह बिखर जायेगी और हम इसे दोबारा तैयार नहीं कर पायेंगे।

भाग 2
भारत में दवा उद्योग

दवाओं के उत्पादन में आत्मनिर्भरता

यद्यपि पूरे विश्व में रोगों को ठीक करने के लिए नई दवाओं और उनके उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई है फिर भी इन दवाओं के उत्पादन की तकनीक यूरोप, उत्तरी अमरीका और जापान केवल कुछ ही देशों के पास उपलब्ध हैं। बहुत कम विकासशील देशों के पास इन दवाओं के उत्पादन की तकनीक उपलब्ध है और वे इनके उत्पादन के लिए बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों पर निर्भर करते हैं। इसका अर्थ यह है कि विश्व के गरीब देशों को इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भरता के कारण दवाओं के लिए बहुत अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है।

भारत इसका अपवाद है और विकासशील देशों में दवाओं का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। आज विश्व की कुल दवाओं में से 8% दवाओं का उत्पादन भारत में होता है और यह पूरी दुनिया में दवाओं का चौथा सबसे बड़ा उत्पादक है। इतना ही नहीं भारत में बनी दवायें बहुराष्ट्रीय कंपनियों की दवाओं के मूल्य के 1/10 या इससे भी कम मूल्य पर 200 से अधिक देशों में निर्यात की जाती है। इस प्रकार भारत एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीकी देशों के लिए सस्ती दवाओं का एक मुख्य स्रोत है।

भारत को यह सफलता दुर्घटनावश नहीं मिली। स्वतंत्रता के समय भारत दवाओं की आपूर्ति के लिए पूरी तरह आयात पर निर्भर था और बहुत कम दवाओं का उत्पादन देश में होता था। 1970 के बाद भारत ने लगभग सभी आवश्यक दवाओं के उत्पादन की क्षमता विकसित कर ली। ऐसा इसलिए संभव हो पाया कि उस समय भारत सरकार ने देश में दवाओं के उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए अनेक कदम उठाये। इनमें से कुछ कदम इस प्रकार हैं :

- 1970 का भारतीय पेटेंट अधिनियम पारित किया गया।
- विदेशी मुद्रा नियामन अधिनियम में बदलाव किए गए।
- 1978 में नई दवा नीति लागू की गई।
- भारत में बड़े पैमाने पर दवाओं के उत्पादन के लिए सार्वजनिक क्षेत्र में उद्योग स्थापित किए गए जिनमें हिन्दुस्तान एंटीबॉयोटिक्स (एचएएल) और इंडियन ड्रग्स एण्ड फार्मास्युटीकल लिमिटेड (आईडीपीएल) शामिल थे।

1970 के भारतीय पेटेंट अधिनियम में उत्पादों पर पेटेंट की आज्ञा नहीं दी गई। इसका अर्थ यह था कि दवाओं के उत्पादन के लिए प्रयोग किए जा रहे रसायनों को पेटेंट नहीं कराया जा सकता था। इसके फलस्वरूप भारतीय कंपनियाँ विश्व बाजार में नई दवायें आने के 3 वर्ष के भीतर ही इनका उत्पादन और विपणन कर सकती थी और इन कंपनियों को पेटेंट समाप्त हो जाने तक 10–12 वर्ष की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती थी। निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है कि किस प्रकार इससे कम समय में भारत में भी नई दवाओं को उतार पाने में सहायता मिली।

तालिका: भारत में नई दवाओं की उपलब्धता

दवा	विश्व बाजार में दवा की उपलब्धता का वर्ष	भारत में इस दवा की उपलब्धता का वर्ष
सॉल्बुटामोल	1973	1976
मैबेन्डाज़ोल	1974	1976
रिफैम्पिसिन	1974	1980
सिमिटाडिन	1976	1981
ब्रॉमहैक्सिन	1976	1982
नैप्रोक्सिन	1978	1982
कैप्टोप्रिल	1981	1985
नॉरफ्लक्सासिन	1984	1988
रैन्टिडीन	1983	1985
एसिक्लोविर	1985	1988
सिप्रोफ्लॉक्सासिन	1985	1989
एस्टमीज़ोल	1986	1988

स्रोतः कॉक्वैस्ट बाई पेटेंट : पेटेंट नियमों का ट्रिप्स समझौता : बी के कियला

नई दवाओं को उपलब्ध कराने के इस कार्य में केन्द्रीय दवा अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला पुणे जैसी सरकारी अनुसंधान संस्थाओं के प्रयासों से बहुत सहायता मिली। उन्होंने लगभग सभी आवश्यक दवाओं के उत्पादन के लिए नई प्रक्रियाओं का आविष्कार किया। इससे भारतीय दवा कंपनियों को नई दवाओं के उत्पादन में सहायता मिली जबकि इन दवाओं पर विश्व के अन्य भागों में पेटेंट दिए जा रहे थे। समय के साथ–साथ इन दवा कंपनियों ने देश में दवा उत्पादन के आधार को बहुत अधिक बढ़ा लिया।

इसके अतिरिक्त विदेशी मुद्रा नियामन अधिनियम (फेरा) और 1978 की दवा नीति के कारण भी विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को देश में ही दवाओं के उत्पादन के लिए बाध्य होना पड़ा (पहले बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बहुत महंगी दरों पर केवल इन दवाओं को आयात करती थीं) और इससे भारतीय कंपनियों को उनके साथ प्रतिस्पर्धा में सहायता मिली। उदाहरण के लिए 1978 की दवा नीति में अनुपात निर्धारित किए गए और सभी दवा निर्माताओं के लिए बड़ी संख्या में प्रयोग होने वाली दवाओं का उत्पादन अनिवार्य कर दिया गया जिससे कि देश में मूल दवाओं के उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई। 1978 में बड़ी मात्रा में दवाओं के उत्पादन का स्तर 1974 में 90 करोड़ रुपयों से बढ़कर 200 करोड़ रुपये हो गया और अगले 5 वर्षों में यह 308 करोड़ रुपयों तक पहुँच गया।

इन घटनाओं से 1970 के बाद देश में दवाओं के मूल्यों में भारी गिरावट आई। बहुत सी आवश्यक दवाओं के मूल्य तो पहले की अपेक्षा घट कर 1/8 या 1/10 के स्तर तक आ गये। दुर्भाग्यवश इस प्रक्रिया को हम लंबे समय तक जारी नहीं रख पाये क्योंकि गैर–उदारवादी आर्थिक सुधारों का दवाओं के उत्पादन और मूल्यांकन पर भी प्रभाव पड़ा।

सार्वजनिक क्षेत्र का योगदान

देश में सार्वजनिक क्षेत्र में पहली दवा कंपनी – हिन्दुस्तान एंटीबॉयोटिक लिमिटेड (एचएएल) की स्थापना 1954 में विश्व स्वास्थ्य संगठन और यूनीसेफ के तकनीकी सहयोग से की गई थी। बाद में सोवियत संघ से प्राप्त तकनीकी सहायता से बहुत अधिक निवेश कर सार्वजनिक क्षेत्र में इंडियन ड्रग्स एण्ड फार्मास्युटीकल्स लिमिटेड (आईडीपीएल) की स्थापना 1961 में ऋषिकेश, हैदराबाद और चैन्नई में की गई। आईडीपीएल ने 16 थोक दवाओं और 166 प्रकार के सर्जिकल उपकरणों का उत्पादन आरंभ किया। सार्वजनिक क्षेत्र की यह दोनों कंपनियाँ देश में आवश्यक थोक दवाओं की 70% आपूर्ति करने में सफल रहीं और 1980 के अंतिम वर्षों तक यह कार्य

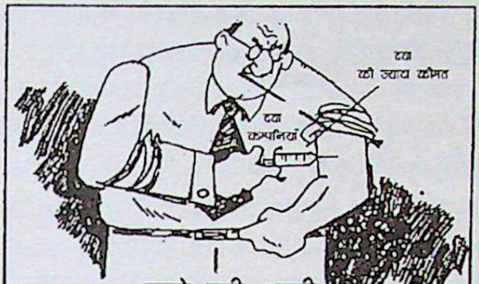

नशे की आदी

करती रहीं। वास्तव में अपनी स्थापना के समय आईडीपीएल का ऋषिकेश स्थित संयत्र पूरे एशिया में दवा निर्माण की सबसे बड़ी इकाई था।

भारत में मूल दवाओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन भी सबसे पहले सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों द्वारा ही आरंभ किया गया। इसके कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भी उत्पादन आरंभ करने के लिए बाध्य होना पड़ा और बाद में निजी क्षेत्र की अनेक भारतीय कंपनियों ने भी दवा उत्पादन आरंभ किया। सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियाँ बड़ी मात्रा में गुणकारी दवाओं का उत्पान कम कीमत पर करती थीं जिससे बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपने उत्पादों को पहले की अपेक्षा बहुत कम मूल्यों पर बेचने के लिए बाध्य होना पड़ा। सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों ने लघु उद्योगों को भी थोक दवायें बेचना आरंभ किया जिससे कि दवाओं के मूल्यों में और कमी आई।

सीडीआरआई और एनसीएल जैसी सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों की महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। हमारे देश की लगभग सभी बड़ी दवा कंपनियाँ इन प्रयोगशालाओं में किए गए अनुसंधान कार्यों से लाभान्वित हुई हैं।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उत्पादन बंद करने की शुरूआत

1970 और 1980 के दशक में दवाओं के क्षेत्र में की गई प्रगति को लंबे समय तक जारी रखना संभव नहीं हो पाया। इसका मुख्य कारण 1990 के आरंभ में भारत में आर्थिक सुधारों का प्रभाव था। इस समय दवा उद्योग पर नियंत्रण को लगभग समाप्त कर दिया गया। 1994 में विश्व व्यापार संगठन के समझौते पर हस्ताक्षर के साथ ही 1970 के पेटेंट अधिनियम में भी परिवर्तन करना आवश्यक हो गया। कंपनियों द्वारा भारत में दवा निर्माण की अनिवार्यता को छोड़ दिया गया। इसके परिणामस्वरूप जल्दी ही बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारत में दवा निर्माण के कार्यों को बंद करना आरंभ कर दिया। उन्होंने उत्पादन को बंद कर अपना ध्यान केवल आयातित या लघु उद्योग से खरीदी गई थोक दवाओं को बेचने में लगा दिया। इससे अब यह स्थिति उत्पन्न हो गई है कि बड़ी दवा निर्माता कंपनियाँ अब केवल व्यापारी बन गई हैं। इस प्रक्रिया का आरंभ बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा किया गया था और अब भारतीय कंपनियाँ

भी इस दौड़ में शामिल हो गई हैं। यदि हम मुंबई के निकट ठाणे–बेलापुर का दौरा करें तो यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि एक समय पर इस क्षेत्र को भारत में दवा निर्माण का केन्द्र माना जाता था। आज यह क्षेत्र कबाड़खाने की तरह दिखाई देते हैं और इन्हें भवन निर्माताओं द्वारा रिहायशी इलाकों और शॉपिंग माल्स में बदला जा रहा है।

इस समय भारत में केवल 5 या 6 बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ दवा निर्माण कर रही हैं। शेष कंपनियाँ या तो दवाओं का आयात करती हैं या इन दवाओं की खरीद लघु उद्योग से कर रही हैं। इस प्रकार यह बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत में स्वयं उत्पादन न करते हुए भी यहाँ विद्यमान हैं। उदाहरण के लिए विश्व की सबसे बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनी ग्लैक्सो स्मिथक्लाइन की पूरे देश में मुंबई, ठाणे, गुजरात, बंगलौर, नासिक और अलीगढ़ में उत्पादन ईकाईयाँ थीं जिनमें से अधिकतर अब बंद हो गई हैं परन्तु फिर भी कंपनी ने वर्ष 2004 में 1000 करोड़ रुपयों से अधिक मूल्य की दवाओं का विपणन किया है। इससे स्पष्ट है कि बदले हुए नियमों का लाभ उठाकर कंपनियाँ अपने कर्मचारियों को काम से हटाकर दवाओं के उत्पादन के लिए लघु उद्योगों का सहारा ले रही हैं जिससे कि उन्हें कम कर चुकाने पड़ते हैं और उत्पादन की लागत भी कम हो जाती है।

हमने देखा है कि किस प्रकार सरकार द्वारा नियंत्रण में ढील दिए जाने से बहुराष्ट्रीय कंपनियों को एक बार फिर दवा आयात करने की छूट प्राप्त हुई है। भारतीय पेटेंट अधिनियम में किए गए हाल ही के बदलाव से दवाओं के निर्माण के उत्पादों पर पेटेंट न देने को समाप्त कर दिया गया है। इससे भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बिना किसी भारतीय प्रतिस्पर्धा के अधिक मूल्य की दवाओं का आयात करने में सहायता मिलेगी। आयात में यह बढ़ोत्तरी अब दिखाई देने लगी है।

भारत द्वारा विश्व व्यापार संगठन के समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद 1999–2000 में निर्मित दवाओं के आयात का स्तर 173 करोड़ रुपयों से बढ़कर 680 करोड़ रुपये हो गया है और वर्तमान वित्तीय वर्ष की पहली तीन तिमाहियों में यह 900 करोड़ तक पहुँच गया है। आयात में यह वृद्धि 420% के स्तर को पार कर चुकी है और वित्तीय वर्ष के समाप्त होने तक इसके 500% या उससे भी अधिक हो जाने की संभावना है।

विश्व बाजार में हाल ही में उतारी गई दवायें भी चिन्ता का विषय हैं। इन दवाओं को पेटेंट की सुरक्षा प्राप्त है और यह बहुत अधिक महंगी हैं। इनमें से बहुत सी दवाओं से वर्तमान दवाओं की अपेक्षा कोई अतिरिक्त उपचार लाभ नहीं मिलते। अब बड़ी बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों ने इन दवाओं के विपणन पर

बहुत अधिक ध्यान देना आरंभ कर दिया है। चूंकि वर्तमान दवा मूल्य नियंत्रण प्रक्रिया आयातित दवाओं पर लागू नहीं होती इसलिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ बाजार में अत्यधिक महंगी और एकाधिकार वाली दवायें उपलब्ध करा रही हैं। मूल रसायनों, माध्यमिक एवं थोक दवाओं और तैयार दवाओं के बीच आयात शुल्क का अंतर न होने के कारण इस रूझान में और तेजी आई है।

इसी प्रकार एलि लिली कंपनी ने हृदय रोग के उपचार के लिए अबैक्सीसिवैप नामक दवा के रियब्रो नामक ब्राण्ड को बाजार में उतारा है। भारत में रिएब्रो दवा का विपणन 40 करोड़ रुपयों तक हो चुका है। एक महीने में रिएब्रो दवा के पूरे कोर्स का मूल्य 30–50 हजार रुपये होता है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ सबसे बड़ी आयातक हैं

तंत्रिका प्रणाली को प्रभावित करने वाली नोवार्टिस कंपनी की दवा साइक्लोस्पोरिन के विपणन का स्तर इसके भारतीय बाजार में उतारे जाने के एक वर्ष से कम समय में 40 करोड़ रुपयों तक पहुँच गया है। उपभोक्ता के लिए इस दवा की एक माह की कीमत 1000–3000 रुपये के बीच होती है और उपचार लगभग 1–2 वर्षों तक चलता है। इससे स्पष्ट है कि यह दवा केवल धनी उपभोक्ताओं के लिए ही है।

दवा नीति में बदलाव

हाथी कमेटी और उसके बाद की स्थिति

1974 में भारत सरकार ने दवा और फार्मास्युटीकल उद्योग के लिए एक समिति का गठन किया जिसे हाथी कमेटी के नाम से जाना जाता है। बहुत से लोगों ने तीसरी दुनिया में दवा निर्माण के क्षेत्र में इस समिति की सिफारिशों को उल्लेखनीय माना है। बंग्लादेश और श्रीलंका जैसे देशों ने भी इन सिफारिशों को अपनाया है। 1978 की दवा नीति और 1979 के दवा मूल्य नियंत्रण आदेश हाथी कमेटी की सिफारिशों पर ही आधारित थे। हाथी कमेटी की सिफारिशों का पालन करते हुए 1978 की दवा नीति में देश में दवा निर्माण में आत्मनिर्भरता लाने के लिए अनेक प्रयासों की घोषणा की गई। इनमें से मुख्य नीतिगत निर्णय इस प्रकार थे :

- सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को वरीयता
- कुछ विशेष दवाओं को केवल सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों द्वारा निर्माण के लिए आरक्षित रखा गया।

- दवा के रसायनों और थोक दवाओं के उत्पादन के अनुपात को निश्चित कर दिया गया जिससे बहुराष्ट्रीय कंपनियों को देश में और अधिक थोक दवाओं का उत्पादन करने के लिए बाध्य होना पड़ा।
- दवाओं के जैनरिक (मूल) नामों का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया।
- लघु उद्योगों को दवा निर्माण के लिए करों में छूट दी गई।
- साधारण दवायें निर्मित करने से बहुराष्ट्रीय कंपनियों को रोकने के लिए लाइसेंस प्रणाली को कड़ाई से लागू किया गया।
- बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अपने विदेशी अंश के स्तर को 40% से कम रखने को अनिवार्य किया गया।

इस नीति की घोषणा के बाद सरकार ने 1979 में दवा मूल्य नियंत्रण आदेश जारी किया गया जिसमें लगभग 378 दवाओं के मूल्यों को नियंत्रित किया गया। सरकार ने दवा नीति के क्रियान्वयन के लिए एक राष्ट्रीय दवा एवं फार्मास्युटीकल विकास परिषद की स्थापना भी की। 1978 की दवा नीति से भारतीय कंपनियों को तेजी से प्रगति करने में सहायता मिली और इससे पहले की स्थिति पूरी तरह बदल गई जबकि भारतीय बाजार पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आधिपत्य था। (तालिका देखें)

तालिकाः भारतीय बाजार में दवाओं का विपणन

वर्ष	बहुराष्ट्रीय कंपनियों का प्रतिशत अंश	भारतीय कंपनियों का प्रतिशत अंश
1952	38	62
1970	68	32
1978	60	40
1980	50	50
1991	40	60
1998	32	68
2004	23	77
2005	20	80

(स्रोतः ओआरजी मैट के विभिन्न अंक)

परन्तु 1986 में सरकार ने एक नई दवा नीति लागू कर 1978 की दवा नीति के बहुत से सकारात्मक पहलुओं को पलट दिया। दवा मूल्य नियंत्रण को कम किया गया, अधिक लाभ कमाने को अनुमति दी गई, आयात सरल दिए गए और बहुत से उत्पादन नियंत्रण नियमों को समाप्त कर दिया गया। 1994 में सरकार ने नई दवा नीति की घोषण की और इसमें 1986 में स्थापित रूझानों को आगे बढ़ाते हुए सरकार ने 1978 की नीति के सभी सकारात्मक पहलुओं को पलट दिया जिनसे कि तीसरी दुनिया में अपनी तरह के सर्वश्रेष्ठ और बहुत से विकासशील देशों से टक्कर लेने में सक्षम आत्मनिर्भर दवा उद्योग की स्थापना में सहायता मिली थी। इस नई नीति में सरकार ने मूल्यों और उत्पादन पर नियंत्रण को कम कर दवा उद्योग को अनेक राहतें प्रदान कीं। मूल्य नियंत्रण के अधीन आने वाली दवाओं की संख्या में कमी की गई और दवा निर्माण पर होने वाले लाभ की सीमा में बढ़ोत्तरी की गई।

सरकार के इस विश्वास को कि बाजार में प्रतिस्पर्धा के कारण दवाओं के मूल्यों पर नियंत्रण रहेगा, ठेस पहुँची और 1994 की दवा नीति के बाद से देश में दवाओं के मूल्यों में अत्यधिक बढ़ोत्तरी देखी गई।

वर्ष 2002 की दवा नीति और उसके बाद की स्थिति

सरकार द्वारा 1986 और 1994 में तैयार की गई दवा नीतियों में 1978 की दवा नीति के सभी लाभप्रद पहलुओं को हटा दिया गया। वर्ष 2002 की दवा नीति लागू होने तक सार्वजनिक क्षेत्र की सभी कंपनियाँ लगभग विनाश के कगार तक पहुँच चुकी थीं। आईडीपीएल कंपनी 1996 से बंद पड़ी है और एचएएल बहुत अधिक नुकसान का सामना कर रही थी जिसे पूरा करने के लिए सरकार को पूंजी लगानी पड़ी। सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा दवा निर्माण के सभी आरक्षणों को वापिस ले लिया गया था।

वर्ष 2002 की नीति में सभी लाइसेंसी प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया गया और निवेश पर 100% विदेशी अंश को मंजूरी दे दी गई। सरकार ने दवाओं पर उत्पाद कर को 8% से बढ़ाकर 16% कर दिया जिससे कि घरेलू उत्पादों की कीमत में वृद्धि हो गई। इसके साथ ही साथ सरकार ने आयात में छूट दी और आयात कर में कमी कर दी जिससे कि दवाओं का आयात करना अधिक लाभप्रद हो गया। इस नीति में दवा मूल्य नियंत्रण आदेश को चरणबद्ध रूप से समाप्त करने की सिफारिश भी की गई जिसके परिणामस्वरूप दवाओं पर सभी प्रकार के मूल्य नियंत्रण लगभग समाप्त हो गए। इस क्षेत्र में इस तरह नियामन नियंत्रणों को समाप्त करने के फलस्वरूप आयात में वृद्धि हुई, दवाओं के मूल्यों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई और बाजार में अधिक मूल्यों की आयातित दवाओं की भरमार हो गई।

दवा उद्योग के इस दावे कि, मूल्य नियंत्रण से दवा उद्योग पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, के विचार का समर्थन करते हुए सरकार ने यह घोषणा कर दी कि धीरे–धीरे दवाओं के मूल्यों पर सभी नियंत्रणों को समाप्त कर दिया जाएगा। यद्यपि इस नई नीति को दवा नीति का नाम दिया गया परन्तु फिर भी किए गए सभी परिवर्तन केवल दवाओं के मूल्यों में वृद्धि के लिए ही किए गए थे। नई नीति में मूल्य नियंत्रण के अधीन आने वाली दवाओं की संख्या को घटा कर केवल 38 कर दिया गया। इस प्रकार एक ही दाव में मूल्य नियंत्रण के अधीन आने वाले दवा बाजार को 40% से घटाकर केवल 25% कर दिया गया। दवाओं पर नियत्रण को समाप्त करने को उचित ठहराने का कोई कारण भी बताया नहीं गया। सौभाग्य से उपभोक्ता समूहों द्वारा सार्वजनिक हित के लिए दायर याचिका के कारण न्यायालय द्वारा इस सिफारिश को क्रियान्वित किए जाने से रोक दिया गया। बाद में न्यायालय ने सरकार द्वारा मूल्य नियंत्रण समाप्त करने के निर्णय पर रोक लगा दी और यह आदेश दिया कि सभी आवश्यक दवाओं पर मूल्य नियंत्रण को जारी रखा जाए।

इसके बाद मौजूदा सरकार ने राष्ट्रीय उद्योग नीति 2006 के मसौदे को जारी किया। यद्यपि इस नए मसौदे में सार्वजनिक स्वास्थ्य के मुख्य मुद्दों पर बात नहीं की गई है फिर भी इसमें सरकार द्वारा राष्ट्रीय कार्यक्रमों के अंतर्गत आने वाली 47 आवश्यक दवाओं और राष्ट्रीय आवश्यक दवाओं की सूची में 354 दवाओं पर मूल्य नियंत्रण को जारी रखने के विचार का वर्णन है। यह एक स्वागत योग्य निर्णय है परन्तु अब इसे दवा उद्योग और सरकार के वित्त विभाग की चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इस कारण से इस दवा नीति को अंतिम रूप दिया जाना शेष है।

दवाओं का निर्माण कौन करता है?

भारत में व्यापार व विकास के महानिदेशक (डीजीटीडी) के रजिस्टर के अनुसार भारत में बड़े और मध्यम स्तर की लगभग 25000 भारतीय दवा निर्माता कंपनियाँ, बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ (लगभग 40) और लघु उद्योग हैं। वास्तव में इनसे आधे से अधिक कंपनियों के पास निर्माण सुविधायें नहीं हैं। वास्तविक रूप से विद्यमान कंपनियों का सही ब्यौरा प्राप्त करना कठिन है क्योंकि डीजीटीडी इस बारे में एक सक्रिय रजिस्टर तैयार नहीं करता है।

1960 के दशक के आरंभिक वर्षों अर्थात भारतीय कंपनियों द्वारा दवा निर्माण शुरू करने से पहले बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ यह दावा करती थी कि भारतीय कंपनियों के पास दवा निर्माण का कौशल उपलब्ध नहीं है। सार्वजनिक क्षेत्र की एचएएल और आईडीपीएल जैसी कंपनियों द्वारा देश में गुणकारी दवाओं

के उत्पादन के साथ ही यह दावा खोखला सिद्ध हुआ। इसके बाद भारतीय कंपनियों द्वारा बड़ी संख्या में लघु उद्योग क्षेत्र में दवा निर्माण कंपनियों की स्थापना की गई। अब दवा निर्माण की यह घटना अपना पूरा चक्र समाप्त कर चुकी है और कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के अलावा अधिकांश बहुराष्ट्रीय कंपनियों की देश में उत्पादन ईकाईयाँ नहीं हैं। बहुत सी कंपनियों ने अपने जाने–पहचाने दवा ब्राण्डों को भारतीय कंपनियों को बेच दिया है। वास्तव में बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा सीधे विक्रय किए जाने वाली अधिकांश दवायें अब देश के लघु क्षेत्र उद्योग में निर्मित होती हैं।

बड़ी कंपनियों के जाने पहचाने ब्राण्डों का अवलोकन करने पर पता चलता है कि इनमें से बहुत सी दवायें इन ब्राण्ड धारक बड़ी कंपनियों द्वारा निर्मित नहीं की जाती। वे केवल दवाओं के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करती हैं और इस दवा का निर्माण लघु क्षेत्र की किसी कंपनी द्वारा करने के बाद इन पर इन बड़ी कंपनियों का लेबल लगा दिया जाता है। ऐसे मामलों में वास्तविक निर्माता का नाम बहुत छोटे अक्षरों में अंकित किया जाता है जिसे उपभोक्ता आसानी से अनदेखा कर देता है जबकि बड़ी कंपनियों का नाम और ब्राण्ड बड़े और मोटे अक्षरों में लिखा होता है। कुछ बड़ी कंपनियाँ उनके द्वारा बेचे जाने वाले विभिन्न ब्राण्डों के निर्माण के लिए 10–15 छोटे निर्माताओं की सेवायें लेती हैं।

बड़ी कंपनियाँ यह दावा करती है कि उनके उत्पादों की गुणवत्ता बेहतर है और इसी कारण से वह अपने उत्पाद के अधिक मूल्य (कभी–कभी यह मूल्य दूसरे ब्राण्डों की अपेक्षा 10 गुना अधिक होता है) को उचित ठहराती हैं। यह एक मूक विषय है क्योंकि यह बड़ी कंपनियाँ ऐसे दावे किस प्रकार कर सकती हैं जबकि उनकी स्वयं की दवायें लघु क्षेत्र की निर्माण कंपनियों द्वारा निर्मित की जाती हैं और बड़ी कंपनियाँ केवल व्यापारी की भूमिका निभाती हैं और दवा निर्माण तथा गुणवत्ता पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता। इसलिए यह विश्वास करना कि बड़ी कंपनियाँ हमेशा गुणकारी दवायें ही बनाती हैं, एक भ्रान्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

दवाओं के मूल्य

भारत जैसे देश में जहाँ अधिकांश जनसंख्या निर्धन है वहाँ दवाओं के मूल्य ही इन दवाओं तक पहुँच को प्रभावित करते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 2004 में प्रकाशित दी वर्ल्ड मेडीसन्स सिचुएशन के अनुसार : '1975 में यह अनुमान लगाया गया था कि विश्व की आधी से कम जनसंख्या को नियमित रूप से दवायें उपलब्ध हो पाती हैं। 1999 के विश्व दवा सर्वेक्षण से पता चला है कि दवाओं की उपलब्धता का यह स्तर घटकर एक तिहाई तक

पहुँच गया है। हालांकि दवाओं तक पहुँच प्राप्त न करने वाले लोगों की 1.7 बिलियन की निश्चित संख्या में कोई बदलाव नहीं आया है। आवश्यकता के समय लोगो तक सही दवायें पहुँचाना अब भी एक बड़ी चुनौती है'। इसी प्रकाशन में यह वर्णन किया गया है कि भारत में 56% लोगों को आधुनिक दवाओं तक पहुँच प्राप्त नहीं है।

दवाओं के वास्तविक निर्माता

भारत में सबसे ज्यादा बिकने वाली दवा बीकासूल है जो अनेक विटामिनों का अनावश्यक मिश्रण है जिसे फाइज़र कंपनी द्वारा विपणन किया जाता है। हमने बीकासूल दवा के लेबल का निरीक्षण किया और यह पाया कि इस दवा का निर्माण फाइज़र द्वारा कमरा नम्बर 52, प्लॉट नम्बर 52, मारोल औद्योगिक एस्टेट, मुबंई 400059 में किया जाता है। इस स्थान का दौरा करने पर हमें फाइज़र कंपनी का एक भी बोर्ड दिखाई नहीं दिया। यह पता एक छोटी सी कंपनी का है जो वास्तव में बीकासूल का निर्माण करती है और इस पर फाइज़र के उत्पाद होने का लेबल लगाती है। इस संबंध में इससे जुड़ा हुआ मुख्य विषय यह है कि यदि इस दवा की गुणवत्ता के संबंध में कोई शिकायत हो तो इसका उत्तरदायित्व किसका होगा।

इससे स्पष्ट होता है कि आवश्यक दवाओं तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए दवाओं के मूल्यों पर नियंत्रण जरूरी है। 1970 में सभी दवाओं के मूल्य सरकार द्वारा नियंत्रित किए जाते थे। 1979 के दवा मूल्य नियंत्रण आदेश में 378 दवाओं पर मूल्य नियंत्रण जारी रखा गया। इन नियंत्रित दवाओं में जीवन रक्षक दवाओं पर लाभ की अधिकतम सीमा 40%, आवश्यक दवाओं पर 55% और अन्य दवाओं पर 75% रखी गई थी। 1979 के दवा मूल्य नियंत्रण आदेश का बहुराष्ट्रीय कंपनियों के नेतृत्व में दवा उद्योग ने जमकर विरोध किया था। उस समय भारतीय बाजार में इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आधिपत्य था। उन्होंने इस आदेश को न्यायालय में भी चुनौती दी और विफल रहने पर मूल्य नियंत्रण के अधीन आने वाली आवश्यक दवाओं का उत्पादन बंद कर दिया। इसके बाद की जाँच में पता चला कि सरकार के आदेशों का उल्लंघन करते हुए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ दवाओं का अधिक मूल्य ले रही थीं।

दुर्भाग्य से सरकार अंत में इन दवा कंपनियों के दबाव के आगे झुक गई और

1986 की दवा नीति में मूल्य नियंत्रण के अधीन आने वाली दवाओं की संख्या को 378 से घटाकर 166 कर दिया गया और अधिकतम लाभ के प्रतिशत को 75% से बढ़ाकर 100% कर दिया गया। 1994 की नीति में और अधिक छूट दी गई और मूल्य नियंत्रण में आने वाली दवाओं की संख्या को घटाकर केवल 74 कर दिया गया। जैसे कि पहले चर्चा की गई है 2002 की दवा नीति लागू होने के पश्चात यह स्थिति और अधिक बिगड़ गई। इस प्रकार 20 वर्षों के समय में दवाओं के मूल्य पर नियंत्रण रखने के सभी प्रयासों को लगभग समाप्त कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप धीरे–धीरे दवाओं के मूल्यों में लगातार वृद्धि होती गई।

तालिकाः अलग-अलग ब्राण्डों की एक समान दवाओं के मूल्यों में अंतर

दवा	ब्राण्ड	कम्पनी	मूल्य	अंतर
ऑफलोक्सासिन	ज़ेडओ	एफडीसी	3.20	
200 मि.ग्रा.	टैरीविड	एवेन्टिस	31.00	969%
लीवोफलॉक्सासिन	लिवोफ्लॉक्स	सिप्ला	6.82	
500 मि.ग्रा.	टैवानिक	एवेन्टिस	95.00	1392%
एज़ीथ्रोमाइसिन	जैथरिन	एफडीसी	8.50	
250 मि.ग्रा	वाइकॉन	फाइज़र	13.14	60%
ज़ीडोवुडीन	ज़ीडोविर	सिप्ला	7.70	
100 मि.ग्रा	रैट्रोविर	जीएसके	53.52	695%
एम्लोडाइपिन	एम्लोडैक	जाइडस	1.51	
5 मि.ग्रा	एम्लोगार्ड	फाइज़र	6.00	397%
ग्लिम्पीराइड	ग्लिमिस्टर	मैनकाइन्ड	0.80	
1 मि.ग्रा	एमेरिल	एवेन्टिस	5.30	696%
पायोग्लिटाज़ोन	पीआईओ	सिस्टॉपिक	0.99	
1 मि.ग्रा	पायोज़ोन	निकोलस	6.00	606%
एटीनॉलोल	ज़िबलॉक	एफडीसी	0.40	
50 मि.ग्रा	टैनॉरमिन	निकोलस	2.45	612%
लैटरोज़ोल	ऑनोलैट	बायोकैम	9.90	
10 मि.ग्रा	फिमिरा	नोवार्टिस	181.50	1833%
रैस्पैरिडॉन	रैस्पीडॉन	टौरैन्ट	1.69	
2 मि.ग्रा	रिस्पर्डल	एथनॉर	27.00	1589%
सिल्डीनाफिल	पैनेग्रा	ज़ाइडस	29.16	
100 मि.ग्रा	वायग्रा	फाइज़र	584.00	2002%

स्रोतः ए भार्गव और सी श्रीनिवासन के संकलन पर आधारित

अधिकांश दवाओं के मूल्य नियंत्रण से हटने के पश्चात अब कंपनियाँ अपनी इच्छानुसार इनका मूल्य प्राप्त करने में सक्षम हैं। उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि किस प्रकार अलग–अलग निर्माताओं द्वारा एक ही दवा के निर्माण किए जाने से उसके मूल्य में किस प्रकार अंतर होता है। कभी–कभी तो मूल्यों में यह अंतर 500% तक होता है। इससे हमें इन कंपनियों द्वारा कमाए गए अत्यधिक लाभ की जानकारी मिल सकती है।

नीचे दी गई तालिका में कुछ दर्दनिवारक दवाओं के उदाहरण दिए गए हैं इनमें दिखा गया है कि किस प्रकार कंपनियाँ इन दवाओं में अन्य दवाओं का मिश्रण कर अत्यधिक लाभ कमाती हैं। रूनैक दवा की 10 गोलियों की कीमत 6 रुपये होती है जबकि इसमें 3 रुपये मूल्य की पैरासीटामोल का मिश्रण कर इसे 12 रुपये में बेचा जाता है। इसी प्रकार सैफेडिक्लो में रैविप्रोजोल मिलाने से डिक्लाफिनिक दवा का मूल्य 4 गुना बढ़ जाता है। इस तरह के अनेक उदाहरण मौजूद हैं जिनसे यह पता चलता है कि इतनी बड़ी संख्या में मिश्रित दवायें बाजार में क्यों उपलब्ध हो रही हैं। इनका एकमात्र कारण और लाभ पाना ही है।

तालिका : चुनी हुई दर्दनिवारक दवाओं का मूल्य
(प्रति 10 गोली का मूल्य रुपयों में)

ब्राण्ड	मिश्रण और पैकिंग	कम्पनी	मूल्य
डिस्प्रिन	327 मि.ग्रा एस्परिन	रैकिट कोल्मैन	3.00
इकोस्प्रिन	320 मि.ग्रा एस्परिन	यूएसवी	10.50
फैनसाइड एसआर	100 मि.ग्रा डिक्लोफैनिक	निकोलस	12.00
सेफडिक्लो	100 मि.ग्रा डिक्लोफैनिक + रैबीप्रॉजोल	निकोलस	43.25
रूनैक	50 मि.ग्रा डिक्लोफैनिक	सन फार्मा	6.00
रूनैक पी	50 मि.ग्रा डिक्लोफैनिक + 500 मि.ग्रा पैरासीटामोल	सन फार्मा	12.00
ईबुजैसिक	200 मि.ग्रा ईबुप्रोफेन	सिप्ला	3.25
ईबुजैसिक प्लस	200 मि.ग्रा ईबुप्रोफेन + 327 मि.ग्रा पैरासीटामोल	सिप्ला	7.41
इमुलिड	100 मि.ग्रा निमुस्लाइड	एमक्योर	12.50
इमुलिड पी	100 मि.ग्रा निमुस्लाइड + 325 मि.ग्रा पैरासीटामोल	एमक्योर	23.50

कम कीमत की भ्रान्ति

आमतौर पर ऐसी भ्रान्ति विद्यमान है कि भारत में दवाईयों की कीमत पूरी दुनिया में सबसे कम है। इस कथन में केवल आंशिक सच्चाई है। अभी भी पेटेंट नियमों के अंतर्गत आने वाली दवायें भारत के पुराने पेटेंट नियमों के कारण बहुत सस्ती हैं। यह स्पष्ट है कि भारतीय पेटेंट अधिनियम 1970 में बदलाव के बाद हम इस लाभ से वंचित हो जाएंगे। पेटेंट के अधीन न आने वाली दवायें (जो वैसे भी देश में दवाओं की कुल बिक्री के 80–85% के बराबर है) वास्तव में भारत में सस्ती नहीं है। सत्य तो यह है कि श्रीलंका और बंग्लादेश की अपेक्षा भारत में आमतौर पर दवाओं के मूल्य अधिक होते हैं। भारत में कुछ बहुत ज्यादा बिकने वाली दवाओं की कीमतें तो कनाडा और इंग्लैंड की अपेक्षा भी अधिक हैं। इससे पता चलता है कि अन्य विकासशील देशों की अपेक्षा भारत में स्थानीय तकनीक और बड़े घरेलू बाजार के संदर्भ में दवा उद्योग द्वारा उठाये जा रहे लाभों को पूरी तरह से ग्राहकों तक पहुँचाया नहीं जाता है।

दवाओं पर मूल्य नियंत्रण एक विश्वव्यापी चलन है

यहाँ यह बताना महत्वपूर्ण है कि विकसित और पूंजीवादी देशों सहित पूरी दुनिया में दवाओं के मूल्य को विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा नियन्त्रित रखा जाता है। आस्ट्रेलिया में 1993 के बाद से बाजार में आने वाली वे सभी दवायें जिनसे वर्तमान दवाओं की अपेक्षा कोई अतिरिक्त लाभ न मिलता हो, वर्तमान दवाओं के मूल्यों पर ही बेची जाती है। जहाँ चिकित्सीय प्रयोगों से नई दवा के बेहतर होने के प्रमाण मिलते हों वहाँ दवा के प्रभाव में बढ़ोत्तरी के अनुपात में कीमत की वृद्धि का आंकलन किया जाता है ताकि ग्राहक को उचित मूल्य पर अच्छी दवा मिले। ब्रिटेन में दवा मूल्य नियामन योजना लागू है जो ब्रिटेन के स्वास्थ्य विभाग और ब्रिटिश दवा उद्योग के संगठनों के बीच स्वैच्छिक समझौते पर आधारित है। इसके अंतर्गत दवा कंपनियाँ राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना को बेची गई दवाओं के आधार पर अपना लाभ निर्धारित करती हैं।

विश्वभर में दवा कंपनियों पर दवाईयों की कीमतें कम करने के लिए दबाव डाला जाता है। संपूर्ण यूरोप और उत्तरी अमरीका में स्वास्थ्य बीमा कंपनियाँ, स्वास्थ्य प्रबंधन संगठन और सरकार (इंग्लैंड और कनाडा जैसे देशों में सरकार स्वास्थ्य बीमा सेवायें उपलब्ध कराती हैं) दवा कंपनियों पर दबाव बनाये रखती है। हाल ही के वर्षों में दवाओं की बढ़ती हुई कीमतों से लंबे समय तक स्वास्थ्य बीमा (सरकार द्वारा वित्त पोषित या निजी क्षेत्र के प्रबंधन द्वारा) प्रदान कर पाने में कठिनाई की जानकारी मिलने के बाद इस प्रकार के दबाव में बहुत अधिक वृद्धि हुई है। इन सभी देशों में ऐसे प्रयास किए जाते हैं कि

अधिकतर मामलों में जैनरिक दवायें दी जायें और इससे जैनरिक दवाओं का एक बहुत बड़ा बाजार बन गया है। बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपेक्षाकृत कम जानी–पहचानी कंपनियों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी होती है जो अपनी दवायें कम कीमत पर बेचती हैं। उदाहरण के लिए अमरीका में 1995–1997 के बीच जैनरिक दवाओं (वे दवायें जो किसी ब्राण्ड नाम से नहीं बेची जाती और छोटी कंपनियों द्वारा बनाई जाने के कारण सस्ती होती है) के मूल्यों में दोहरे अंकों की गिरावट देखी गई। मूल्यों में यह गिरावट हैच–वैक्समैन अधिनियम के कारण संभव हुई जिसके अंतर्गत जैनरिक दवाओं के अनुमोदन की प्रक्रिया को बहुत सरल बना दिया गया। इसके कारण 1984 से जैनरिक दवाओं से मिलने वाली प्रतिस्पर्धा बहुत बढ़ गई है जिससे कि केवल 1994 में ही लगभग 8–10 बिलियन अमरीकी डॉलरों की बचत संभव हुई।

पूरी दुनिया में दवाओं पर नियंत्रण रखने की प्रक्रिया इस विश्वव्यापी अनुभव के कारण उत्पन्न हुई कि सामान्य बाजार प्रक्रियाओं से मूल्यों के स्थिर होने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। एकाधिकार की स्थिति से बचने के लिए बाजार में बहुत से अन्य हस्तक्षेप करना भी आवश्यक है। उपभोक्ता वस्तुओं की तुलना में दवाओं के मामले में बाजार और उपभोक्ताओं के बीच कोई सीधा संबंध नहीं होता। उपभोक्ता चिकित्सक या दवा विक्रेता की सिफारिश पर दवायें खरीदते हैं। इसके फलस्वरूप कंपनियों की विपणन कार्ययोजनाओं में चिकित्सकों और दवा विक्रेताओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि चिकित्सक प्रतिस्पर्धी दवाओं के मूल्य के आधार पर अपने निर्णय नहीं लेते। इसी तरह दवा विक्रेताओं को भी सस्ती दवायें बेचने में विशेष रूचि नहीं होती। इसलिए यदि हम यह मान लें कि बाजार में प्रतिस्पर्धा से दवाओं की कीमत कम रहेगी तो यह एक ऐसा विश्वास होगा जो भारत या किसी भी अन्य स्थान पर पूर्व के अनुभवों में दिखाई नहीं देता।

विपणन के अनैतिक तरीके

भारत में दवाओं के बाजार में अनावश्यक दवाओं और संदेहास्पद दवाओं की भरमार है। इनमें से कुछ दवाओं की तो बाजार में बहुत अधिक माँग है। यहाँ प्रश्न यह खड़ा होता है कि जब इन दवाओं से कोई लाभ नहीं है या रोगों के उपचार में इनकी कोई भूमिका नहीं होती तो फिर ये इतनी बड़ी मात्रा में किस प्रकार बिकती हैं। उचित और आवश्यक दवाओं के लिए पर्याप्त बाजार उपलब्ध रहता है और इन दवाओं की माँग को बढ़ाने के लिए अतिरिक्त प्रयास करने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु रोगों के उपचार में लाभहीन या कम प्रभावी दवाओं के लिए बाजार तैयार करने हेतु विशेष प्रयासों की आवश्यकता होती है। इसी स्थिति में अनैतिक विपणन पद्धतियों का उद्‌गम देखा जाता है। यह ऐसी पद्धतियाँ हैं जो लाभहीन उत्पादों के लिए कृत्रिम माँग उत्पन्न करती हैं।

भारत में दवा उद्योग अपने कुल वार्षिक विक्रय राशि का 20% या 4000 करोड़ रुपये विज्ञापनों पर खर्च करता है। गणना करने पर यह राशि प्रति चिकित्सक वार्षिक 50 हजार रुपये होती है और प्रत्येक चिकित्सक लगभग 2.5 लाख रुपयों की दवा लिखता है। पूरे भारत में सुस्थापित रिश्वत देने की योजनाओं के द्वारा अनावश्यक रोग जाँच प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। यह अत्यंत चिन्ता का विषय है कि 70 के दशक में मुंबई में आरंभ हुई प्रक्रिया अब पूरे देश में फैल गई है और यह अनावश्यक स्वास्थ्य देखभाल अंतक्षेपों का मुख्य कारण है।

हमारे देश में कोई भी व्यक्ति बिना किसी निर्माण ईकाई की स्थापना के दवा कंपनी आरंभ कर सकता है परन्तु प्रत्येक कंपनी के लिए एक सुव्यवस्थित विपणन विभाग का होना आवश्यक है। दवा कंपनियाँ चिकित्सीय व्यवसाय से जुड़े लोगों को 'उपहार' और 'प्रोत्साहन' देने के लिए बड़ी धनराशि खर्च करती हैं। वे अनावश्यक दवाओं को बढ़ावा देने के लिए गलत या भ्रामक प्रचार का सहारा लेती हैं। दवा कंपनियों द्वारा अपने उत्पादों की बिक्री बढ़ाने के लिए तैयार सामग्री में किए गए दावों का वैज्ञानिक परीक्षण नहीं दिया जाता और चिकित्सकों को भ्रमित करने के लिए बड़े–बड़े दावे किए जाते हैं। चिकित्सकों को दाँत साफ करने की तीलियों से लेकर कार जैसे उपहार देकर उन्हें उस कंपनी के उत्पादों की सिफारिश करने के लिए कहा जाता है। उन्हें विदेशी पर्यटन स्थलों या भारत में पर्यटन के लिए जाने हेतु भी प्रायोजित किया जाता है।

इस प्रकार के व्यवहारों से न केवल चिकित्सीय व्यवसाय भ्रष्ट होता है बल्कि इससे बाजार में अनावश्यक दवाओं की उपलब्धता भी बढ़ जाती है

और चिकित्सकों द्वारा अनावश्यक दवायें लोगों को दी जाती हैं। यह स्थिति देश में दवाओं के संबंध में पक्षपातरहित जानकारी उपलब्ध न होने के कारण और अधिक जटिल हो जाती है और चिकित्सक आमतौर पर नये उत्पादों के बारे में जानकारी के लिए दवा कंपनियों पर निर्भर करते हैं।

बहुत से देशों में ऐसी व्यवस्थायें लागू की गई हैं जिनसे दवा कंपनियों द्वारा अपने उत्पादों के बारे में जानकारी दिए जाने पर नियंत्रण रखा जाता है। दवाओं को बढ़ावा देने के बारे में मॉडल दिशा–निर्देश विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा उपलब्ध कराये गये हैं जिनमें दवाओं के विपणन के लिए नैतिक मानकों की सिफारिश की गई है। हमारे देश में सरकार द्वारा ऐसे कोई भी मानक स्थापित न किए जाने के कारण दवा कंपनियाँ अपनी इच्छानुसार काम करती हैं। किसी भी वयस्क डॉक्टर के क्लीनिक में जाने पर हम बड़ी मात्रा में महंगी उपहार सामग्रियाँ और दवाओं के नमूने देख सकते हैं जो इस बात की पुष्टि करते हैं कि दवा कंपनियों द्वारा अपनी दवाओं को बेचने के लिए संसाधनों को कितना व्यर्थ किया जाता है। अंत में उपभोक्ता को ही इस व्यर्थ खर्च को वहन करना पड़ता है जिसे वह दवाओं का अधिक मूल्य चुकाकर पूरा करता है। स्पष्ट है कि दवाओं को बढ़ावा देने पर कठोर नियंत्रण की आवश्यकता है।

हमें दवा उद्योग की क्या आवश्यकता है ?

अंत में हमें यह जानने की आवश्यकता है कि दवायें एक ऐसी उपभोक्ता वस्तु है जिसकी आवश्यकता सबसे अधिक उन लोगों को होती है जो इनका खर्च वहन नहीं कर सकते। कारों या कपड़े धोने की मशीन जैसे उत्पादों के विपरीत इस उद्योग के विद्यमान होने का एकमात्र कारण यह है कि यह उद्योग आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को अपने उत्पाद उपलब्ध करा पाने में सक्षम है। यदि उद्योग अपने इस मौलिक कर्त्तव्य में अक्षम रहे तो उसकी मौजूदगी पर प्रश्न चिन्ह उठ सकते हैं। हम पहले ही इस स्थिति से गुजर रहे हैं कि हमारी अधिकांश जनसंख्या को दवाओं तक पहुँच इसलिए नहीं है कि वह उनके मूल्य को वहन नहीं कर सकती। इस तरह की स्थिति में दवाओं के मूल्यों में बढ़ोत्तरी से जनसंख्या का बड़ा भाग अधिक कीमत के कारण दवाओं को खरीद नहीं पाएगा। ऐसे में यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि वे लोग जिन्हें दवाओं की सबसे अधिक आवश्यकता है, वे दवाओं का मूल्य वहन न कर पाये तो हमें इस दवा उद्योग की क्या आवश्यकता है? दवा उद्योग का तर्क है कि पर्याप्त प्रतिस्पर्धा से मूल्य नियंत्रण न होने पर भी दवाओं का मूल्य कम हो सकता है। यदि ऐसा ही है तो दवा कंपनियाँ मूल्य नियंत्रण से इतनी चिन्तित क्यों हैं।

महाराष्ट्र में सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाओं में आवश्यक दवाओं की उपलब्धता की केस-स्टडी

आवश्यक दवायें क्या हैं?

यह ऐसी दवायें हैं जो अधिकांश जनसंख्या की आवश्यकता को पूरा कर सकती हैं (विश्व स्वास्थ्य संगठन)। सामान्य रूप से प्रयोग की जाने वाली 2000 दवाओं में से आवश्यक दवाओं की संख्या लगभग 350 है। आवश्यक दवाओं के बारे में जानने योग्य मूल बातें इस प्रकार हैं :

- सभी स्वास्थ्य देखभाल केन्द्रों में यह दवायें हर समय पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होनी चाहिए।
- आवश्यक दवाओं के उपलब्ध न होने से मृत्यु या गंभीर जटिलतायें उत्पन्न हो सकती हैं जिससे कि जीवन भर स्वास्थ्य प्रभावित हो सकता है।
- इसलिए आवश्यक दवाओं की उपलब्धता एक मानवाधिकार है।

भारत में आवश्यक दवाओं की उपलब्धता

- भारत में दवाओं की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1948 में 4 रुपये से बढ़कर 2003 में 300 रुपये हो गई है।
- यदि हम मूल्य वृद्धि को छोड़ दें तो उपलब्धता में यह वृद्धि केवल 2 गुनी है।
- महाराष्ट्र के सतारा जिले में किए गए एक अध्ययन के अनुसार : यदि 1991–92 में प्रति व्यक्ति 100 रुपयों की वार्षिक उपलब्धता को उचित और समानता के आधार पर प्रयोग किया जाता तो प्राथमिक देखभाल स्तर पर लोगों की आवश्कताओं को पूरा किया जा सकता था।

सार्वजनिक क्षेत्र में दवाओं की कम उपलब्धता

- निर्धनता के कारण कम से कम रोग के 30% मामलों का उपचार नहीं हो पाता।
- सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में केन्द्र सरकार द्वारा स्वास्थ्य देखभाल पर किया जाने वाला खर्च 1985 के 1.3% की अपेक्षा 2003 में घटकर 0.9% रह गया जबकि इस बारे में विश्व स्वास्थ्य संगठन की सिफारिश 5% की है।

- 2002–03 में महाराष्ट्र सरकार का स्वास्थ्य व्यय 1985–86 में राज्य के घरेलू उत्पाद के 1% से घटकर 0.6% रह गया।

सतारा जिले में 1992-93 में किए गए अध्ययन के अनुसार :

- सतारा जिले में 1991–92 के दौरान सार्वजनिक क्षेत्र के लिए दवा आपूर्ति का स्तर उस जिले की कुल दवा आपूर्ति का केवल 2.54% था।
- प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में आपूर्ति की जाने वाली लगभग 60% दवायें वर्ष की 75% अवधि अर्थात 9 महीनों तक उपलब्ध नहीं थी।

वृहत्त मुंबई नगर निगम में दवाओं की आपूर्ति

- स्त्री रोग के बाह्य रोगी विभाग में दी जाने वाली 60 में से 34 दवायें वृहत्त मुंबई नगर निगम की सूची में शामिल ही नहीं थी।
- आवश्यक दवाओं की सूची में सम्मिलित 264 दवाओं में से 154 (53%) वृहत्त मुंबई नगर निगम की सूची में शामिल नहीं थी।

यदि प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में आने वाले सभी रोगियों का पर्याप्त उपचार करना हो तो.........!!!

- सतारा जिले में किए गए अध्ययन के अनुसार यदि प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में आने वाले सभी रोगियों का पर्याप्त और उचित उपचार करना हो तो प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में दवाओं की आपूर्ति को लगभग दुगना करना होगा जिसपर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के लगातार होने वाले वार्षिक खर्च का 10 की अपेक्षा 20% व्यय होगा।
- वर्तमान में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में 60 हजार रुपये मूल्य की दवाओं की वार्षिक आपूर्ति की जाती है जो 2 रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष है जबकि प्रति व्यक्ति उपभोग 300 रुपये प्रतिवर्ष है।
- महाराष्ट्र के 1682 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में दवाओं की आपूर्ति को दुगना करने के लिए केवल 10 करोड़ रुपयों की आवश्यकता होगी (महाराष्ट्र सरकार का स्वास्थ्य पर वार्षिक खर्च लगभग 2000 करोड़ रुपये होता है)। इसकी तुलना सरकार द्वारा व्यर्थ किए गए संसाधनों से करें। विशेषज्ञों की समिति की राय थी कि मुंबई से पुणे के बीच का एक्सप्रेस हाईवे आर्थिक रूप से अव्यावहारिक होगा परन्तु फिर भी इस पर 1500 करोड़ रुपयों का खर्च कर इसे तैयार किया गया और अब इस पर हर वर्ष 130 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता दी जा रही है।

आवश्यक दवाओं की उपलब्धता के संबंध में हमारी माँग

- उपकेन्द्र, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, ग्रामीण अस्पताल, जिला अस्पताल के

लिए आवश्यक दवाओं की एक मानक सूची तैयार की जानी चाहिए। यह दवायें हर समय इन स्वास्थ्य केन्द्रों में उपलब्ध हों और इस सूची में हर तीन वर्ष में बदलाव किया जाए।

- इस मानक सूची के अनुसार सभी आवश्यक दवायें नियमित रूप से और पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराई जाएं।
- यदि संबंधित स्वास्थ्य केन्द्रों में दवाओं के उपलब्ध न होने के कारण लोगों को इन्हें बाजार से खरीदने के लिए बाध्य होना पड़े तो सरकार लोगों द्वारा किए जा रहे इस खर्च की भरपाई करे।
- एचआईवी बाधित व्यक्तियों के लिए संक्रमण से सुरक्षा देने वाली दवायें उपलब्ध कराई जानी चाहिए जिनमें निम्नलिखित दवायें शामिल हों :
  - ➔ मौकापरस्त संक्रमणों से बचाव के लिए एंटी–माइक्रोबल दवायें – टीबी रोधी दवायें (आईसोनैक्स, रिफैम्पिसिन, इथैम्बुटोल, पायराज़ीनामाइड, स्ट्रैप्टोमाइसिन, पास), को–ट्राईमॉक्साज़ोल, सल्फा–फाइरीमिथामाइन।
  - ➔ बच्चों के लिए अधिकतम दवायें उपलब्ध हों।
  - ➔ एंटी–रेट्रोवायरल दवायें राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के अंतर्गत उपलब्ध कराई जानी चाहिए।
- आवश्यक दवाओं की आपूर्ति व्यवस्था की मॉनीटरिंग को सामुदायिक मॉनीटरिंग कार्यों में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

दवा नीति और आवश्यक दवाओं तक पहुँच के विषय पर 16-17 अप्रैल 2005 को कोलकाता में आयोजित राष्ट्रीय सैमिनार में जारी कोलकाता घोषणा-पत्र

दवा नीति और आवश्यक दवाओं तक पहुँच के विषय पर राष्ट्रीय सैमिनार का आयोजन जन स्वास्थ्य अभियान, फेडरेशन ऑफ मेडिकल एण्ड सेल्स रिप्रेजैन्टेटिव्स एसोसियशन्स ऑफ इंडिया, दवा नीति की राष्ट्रीय अभियान समिति और ऑल इडिया ड्रग एक्शन नेटवर्क द्वारा किया गया और इसे विश्व स्वास्थ्य संगठन के भारत स्थित कार्यालय का समर्थन मिला। इस सैमिनार में देश की दवा नीति के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई और इसमें देशभर से आये 128 कार्यकर्त्ताओं, शिक्षाविदों और विशेषज्ञों ने भाग लिया तथा भारत में दवा उद्योग से जुड़े अनेक विषयों पर चर्चा की।

सैमिनार में इस बात का संज्ञान लिया गया कि बड़ी संख्या में लोगों को प्रभावित करने वाले रोगों को नियंत्रित कर पाने में देश का रिकॉर्ड संतोषजनक स्तर से कम रहा है। देश को अब जीवनयापन के नए तरीकों के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों और संक्रमणों जैसे एचआईवी/एड्स की चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2002 में स्वीकार की गई इस स्थिति को गंभीरता से लिए जाने की आवश्कता है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–2 में उठाये गए रोग के रूझानों और सामान्य रोगों पर भी विचार किया जाना चाहिए।

सैमिनार में भूमंडलीयकरण, निजीकरण, उदारीकरण तथा नई पेटेंट प्रणाली के कारण उत्पन्न स्थिति पर भी चर्चा की गई जिनके कारण दवाओं के क्षेत्र में देश की आत्मनिर्भरता और आवश्यक दवाओं की उपलब्धता व खर्च वहन करने की क्षमता को खतरा उत्पन्न हो गया है। सैमिनार में दवाओं के बढ़ते मूल्यों और निर्धनों पर इस मूल्य वृद्धि के विपरीत प्रभावों पर चिन्ता व्यक्त की गई।

उपरोक्त स्थितियों को ध्यान में रखते हुए सैमिनार में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि राष्ट्रीय दवा नीति तैयार करते समय निम्नलिखित सुझावों पर विचार किया जाना चाहिए :

राष्ट्रीय दवा नीति की संरचना

सैमिनार में एक ऐसी राष्ट्रीय दवा नीति तैयार किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया जो आवश्यक दवाओं तक पहुँच और

राष्ट्रीय स्वावलंबिता जैसे प्रमुख विषयों के समाधान उपलब्ध करा सके। इस नीति को स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण तथा रसायन एवं उर्वरक मंत्रालयों की अंतरक्षेत्रीय समिति द्वारा दवा उद्योग से जुड़े सभी पणधारियों से सलाह के बाद तैयार किया जाना चाहिए। ये दोनों मंत्रालय मिलकर एक राष्ट्रीय दवा एवं उपचार प्राधिकरण की स्थापना करें जो एक विधायी प्राधिकरण हो और जिसके पास राष्ट्रीय दवा नीति से जुड़े सभी विषयों का नियामन करने का अधिकार हो। विशेषज्ञों के अलावा इस प्राधिकरण में स्वास्थ्य आंदोलनों के प्रतिनिधियों को भी स्थान दिया जाए।

आवश्यक दवाओं की राष्ट्रीय सूची

1. जानपदिक रोग विज्ञान के आँकड़ों के आधार पर सरकार को चाहिए कि वह आवश्यक दवाओं की राष्ट्रीय सूची में संशोधन करे और विभिन्न स्तरों पर आवश्यक दवाओं की ऐसी सूची तैयार करे जो प्रत्येक स्तर की स्वास्थ्य देखभाल प्रक्रिया के लिए उपयुक्त हो। राष्ट्रीय सूची विभिन्न राज्यों द्वारा अपनाई जाए और राज्य की स्थानीय स्थितियों तथा रोग के रूझानों को देखते हुए इसमें आवश्यकतानुसार फेरबदल किए जायें।
2. सरकार को आवश्यक दवाओं की सूची में सम्मिलित दवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करनी होगी। उत्पादन के आरंभिक स्तर से ही इन दवाओं के निर्माण की प्रक्रिया सुनिश्चित की जानी चाहिए।
3. सरकारी अस्पतालों और सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में आवश्यक दवाओं की राष्ट्रीय सूची के आधार पर दवाओं की आपूर्ति और प्रयोग को अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। दवाओं की आपूर्ति पारदर्शी प्रक्रिया द्वारा की जाए और आवश्यक दवाओं की राष्ट्रीय सूची में सम्मिलित दवाओं को बढ़ावा देने के लिए नियमित प्रशिक्षण और प्रोत्साहन गतिविधियाँ की जानी चाहिए।

अनावश्यक और हानिकारक दवायें

1. बाज़ार में बहुत सी अनावश्यक और हानिकारक दवाओं की आसानी से उपलब्धता को देखते हुए एक विशेष डीटीबीए समिति का गठन किया जाना चाहिए ताकि इस प्रकार की सभी दवाओं और निर्धारित अनुपात में मिश्रित दवाओं को निश्चित समयावधि के भीतर समाप्त किया जा सके। अब से ऐसी दवायें और निर्धारित अनुपात में मिश्रित दवाओं को प्रतिबंधित कर दिया जाना चाहिए जिनके बारे में मानक पाठ्य पुस्तकों या औषधि संबंधी जानकारी के स्रोतों में कोई उल्लेख न हो व इनके विपणन पर भी रोक लगा दी जानी चाहिए। सभी वर्तमान दवाओं का नियमित अंतराल से विशेषज्ञों द्वारा इन दवाओं की उपयुक्तता, प्रभावशीलता और आवश्यकता का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

2. इजेक्शन द्वारा दिए जाने वाले गर्भनिरोधक, त्वचा के भीतर लगाये जाने वाले इम्प्लान्ट और प्रजननशीलता को बढ़ाने वाले टीकों को राष्ट्रीय परिवार नियोजन कार्यक्रम में प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।
3. देश के सभी राज्यों में दवाओं के विपरीत प्रभावों की मॉनीटरिंग करने के केन्द्र स्थापित किए जाने चाहिए और इन्हें पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराये जाने चाहिए।
4. यदि देश में या विश्व के किसी भी भाग से किसी दवा के विपरीत प्रभावों की बहुत अधिक जानकारी मिले तो उस दवा को बाजार से हटाने के लिए मामले को डीटीबीए समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

जैनरिक दवाओं का प्रयोग

जैनरिक दवाओं के प्रयोग को प्रोत्साहन देने के लिए जैनरिक नामों से बेची जाने वाली सभी दवाओं को शुल्कों और करों में छूट दी जानी चाहिए। दवा के सभी पैकेटों पर दवा के ब्राण्ड की अपेक्षा उस दवा का जैनरिक नाम मोटे अक्षरों में लिख जाए।

चिकित्सीय शिक्षा

चिकित्सीय शिक्षा के पाठ्यक्रम में आवश्यक दवाओं और उपयुक्त उपचार पद्धतियों के विषय को शामिल किया जाना चाहिए।

भारतीय पेटेंट अधिनियम

1. सरकार को लगातार ट्रिप्स समझौते को विश्व व्यापार संगठन से बाहर रखने की और विकासशील देशों को उत्पादों पर पेटेंट के बारे में छूट दिए जाने के मुद्दे पर पुनः विचार–विमर्श किए जाने की पैरवी करते रहना चाहिए।
2. सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वह पेटेंट अधिनियम की लोचता को देशी दवा उद्योग के विकास और वृद्धि के लिए प्रयोग करे।
3. सरकार पेटेंट दिए जाने के मानकों की लगातार मॉनीटरिंग करती रहे ताकि अकारण ही पेटेंट न दिए जा सकें और वर्तमान में लागू पेटेंट को हमेशा के लागू न रखा जा सके।
4. सरकार महामारी रूप में होने वाले रोगों या रोगों के कारण विकट स्वास्थ्य स्थिति की संभावना होने पर इन स्थितियों को आपातस्थिति घोषित करते हुए 2001 के दोहा घोषणा–पत्र की उदारता से व्याख्या करे। ऐसी स्थिति में अनिवार्य लाइसेंस बिना विलंब के जारी किए जाने चाहिए।

5. किसी पेटेंट की हुई दवा के अधिक मूल्य या उपलब्धता न होने पर अथवा निर्यात के लिए बाजार उपलब्ध होने पर सरकार अनिवार्य लाइसेंस जारी करने को सुविधाजनक बनाये।

दवा उत्पादन और दवाओं की उपलब्धता

1. दवाओं का उत्पादन आरंभिक स्तर से सुनिश्चित करने के लिए दवाओं के मिश्रण और बल्क दवाओं के अनुपात को पुनः निर्धारित किया जाना चाहिए।
2. सभी दवा निर्माताओं द्वारा आवश्यक दवाओं की राष्ट्रीय सूची में वर्णित दवाओं का एक निश्चित अनुपात में निर्माण सुनिश्चित करने के लिए उत्पादन नियंत्रण प्रक्रियायें लागू की जानी चाहिए।
3. दवा उद्योग में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की 100% साम्या भागीदारी को अनुमति देने की नई नीति को बदला जाना चाहिए और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बहुमत में साम्यता धारण करने को तभी अनुमति दी जानी चाहिए जबकि यह कंपनियाँ दवाओं के निर्माण की तकनीक और अनुसंधान सुविधाओं को देश में लायें।
4. ऐसी बल्क दवाओं या दवाओं के मिश्रण के आयात पर अतिरिक्त शुल्क लगाकर प्रतिबंध लगाये जाने चाहिए जिनके निर्माण के लिए देश में ही पर्याप्त क्षमता उपलब्ध हो।
5. ऋण लाइसेंस या थर्ड पार्टी लाइसेंस प्रदान करने की मौजूदा प्रणाली को हटा देना चाहिए। प्रत्येक दवा के लेबल पर दवा निर्माता का नाम व पता स्पष्ट रूप से अंकित होना चाहिए और दवा में किसी प्रकार की शिकायत होने, हर्जाना भरने और दवा बदलने का उत्तरदायित्व लाइसेंसधारी का होना चाहिए।

दवाओं का मूल्य निर्धारण

1. यह ध्यान में रखते हुए कि भारत में स्वास्थ्य देखभाल पर होने वाले खर्च का आधे से अधिक खर्च दवाओं पर होता है और स्वास्थ्य देखभाल की 80% लागत का वहन रोगियों को स्वयं करना पड़ता है, सभी दवाओं को मूल्य नियंत्रण प्रणाली के अधीन लाया जाना चाहिए। मूल्य नियंत्रण की ऐसी प्रक्रियायें लागू की जायें जो पारदर्शी और क्रियान्वयन में आसान हों। मूल्य नियंत्रण की प्रणाली से कार्यकुशल दवा निर्माताओं को लाभ मिलना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में दवाओं पर लाभ की अधिकतम सीमा 100% से अधिक नहीं होनी चाहिए।
2. थोक एवं खुदरा व्यापारियों के लाभ सहित व्यापार से होने वाला अधिकतम लाभ 30% से अधिक नहीं होना चाहिए।

3. एक अर्ध–न्यायिक राष्ट्रीय दवा मूल्य प्राधिकरण की स्थापना की जानी चाहिए जिसे दवा निर्माताओं द्वारा अधिकतम मूल्य निर्धारण का उल्लंघन करने पर दंडित करने के अधिकार प्राप्त हों।
4. आयातित दवाओं के लिए मूल्य के आँकड़े और दवा निर्माता द्वारा कीमत का प्रमाण पत्र दिए जाने को अनिवार्य किया जाना चाहिए।
5. कैन्सर व एचआईवी/एड्स तथा किसी निर्माण समूह से संबंध न रखने वाली दवाओं को आयात शुल्क सहित सभी करों और शुल्कों में छूट दी जानी चाहिए।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग

सार्वजनिक क्षेत्र की दवा कंपनियों को निर्धनों तथा उपेक्षित रोगों के उपचार की दवाओं के निर्माण के प्रमुख निर्माता बनाकर इन दवाओं का उत्पादन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। आईडीपीएल और एचएएल जैसी सार्वजनिक क्षेत्र की दवा कंपनियों का पुनरुत्थान किया जाना चाहिए और उन्हें इस क्षेत्र में आरक्षण, सरकार द्वारा दवाओं की खरीद में वरीयता के रूप में क्षेत्रीय सहयोग प्रदान किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय आपातस्थिति और अत्यधिक आवश्यकता होने पर अनिवार्य लाइसेंस देते समय इन सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। निजी कंपनियों द्वारा कम मूल्यों पर उत्पादन न की जाने वाली आवश्यक दवाओं के निर्माण के लिए नई सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों की स्थापना कर इन्हें बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

अनुसंधान एवं विकास

1. हमारे राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थानों, प्रयोगशालाओं तथा विश्वविद्यालयों की विशेषताओं के आधार पर और देश में विभिन्न प्रकार की औषधीय वनस्पतियों की बहुलता के आधार पर दवाओं के क्षेत्र में मौलिक अनुसंधान कार्यों को बढ़ावा दिए जाने के राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए जाने चाहिए। इन अनुसंधान संस्थानों को दवाओं पर अनुसंधान के लिए पर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराई जानी चाहिए। ऐसे राज्यों में जहाँ व्यवस्थागत सुविधायें उपलब्ध हों वहाँ दवाओं पर अनुसंधान के क्षेत्रीय केन्द्र स्थापित किए जा सकते हैं। विश्वविद्यालयों को ऐसे पाठ्यक्रम लागू करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जिनसे आधुनिक दवा अनुसंधान संबंधी गतिविधियों के लिए पर्याप्त संख्या में उच्च दर्जे के मानवीय संसाधन तैयार किए जा सकें। अनुसंधान विकास गतिविधियों में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका को बढ़ाया जाना चाहिए।

2. सार्वजनिक धन से वित्तपोषित अनुसंधान प्रयोगशालाओं को अपनी गतिविधियों में समन्वय रखना चाहिए। सार्वजनिक धन प्राप्त करने वाले अनुसंधान संगठन दवाओं के क्षेत्र में अनुसंधान कार्यों के अंतर्गत एक समान दवाओं के विकास के प्रयास न करें बल्कि वे नई दवाओं की पहचान और प्रयोग के लिए पर्याप्त ज्ञान विकसित करने पर ध्यान दें।
3. देश में विकसित सभी दवाओं को 10 वर्षों तक सभी करो और शुल्कों से छूट दी जानी चाहिए।
4. हेल्सिंकी घोषणा–पत्र तथा अन्य अंतर्राष्ट्रीय समझौतों और घोषणाओं के अंतर्गत दवाओं के बारे में प्रयोग करते हुए नैतिक व्यवहारों को अपनाये जाने के लिए व्यापक नियम तैयार किए जायें जिससे कि उन व्यक्तियों की सूचित सहमति प्राप्त करने के कठोर दिशा–निर्देश जारी किए जा सकें जो इन दवाओं के प्रयोग में सम्मिलित होते हैं।
5. प्रत्येक राज्य में विशेष रूप से स्थापित स्थायी नैतिकता समितियों द्वारा बहुराष्ट्रीय कंपनियों के चिकित्सीय प्रयोगों को बाहरी एजेन्सियों से कराने की प्रक्रिया की मॉनीटरिंग की जाये।
6. डीजीसीआई द्वारा चिकित्सीय प्रयोगों और पद्धतियों के परिणामों को अनुमोदित करने की प्रक्रिया को सार्वजनिक किया जाना चाहिए।
7. चिकित्सीय प्रयोगों का चौथा चरण अनिवार्य होना चाहिए और दवा कंपनियों द्वारा इसके स्थान पर पीएमएस अध्ययन लागू करने की छूट नहीं दी जानी चाहिए।

गुणवत्ता नियंत्रण और दवाओं की जानकारी

1. दवा निर्माता को दवा की गुणवत्ता के लिए पूरी तरह उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए। समस्याओं के निवारण तथा नकली या कम गुणकारी दवायें बनाने वालों पर मुकदमा चलाने के लिए अलग से एक खाद्य एवं दवा न्यायालय की स्थापना की जानी चाहिए।
2. दवा एवं सौंदर्य प्रसाधन अधिनियम में संशोधन कर दोषी व्यक्तियों के लिए कड़ी सजा का प्रावधान किया जाना चाहिए।
3. राज्य और केन्द्र, दोनों स्तरों पर दवा नियंत्रण संगठन को पर्याप्त रूप से सुदृढ़ किया जाना चाहिए और उन्हें मूलभूत सुविधायें और मानवीय संसाधन उपलब्ध कराये जाने चाहिए।
4. प्रत्येक राज्य में राजकीय दवा नियंत्रक के अधीन कम से कम एक कार्यशील और आधुनिक उपकरणों से लैस दवा जाँच प्रयोगशाला होनी चाहिए।

5. राज्य एवं केन्द्र सरकारों के दवा नियंत्रकों की अपनी–अपनी वेब–साइट होनी चाहिए। इन वेब–साइटों पर अन्य जानकारियों के अतिरिक्त प्रतिबंधित और बाजार से हटाई गई दवाओं की नवीनतम जानकारी, उनके ब्राण्ड और वर्तमान नियमों का विवरण होना चाहिए।
6. सभी क्षेत्रों में निर्माताओं के साथ विचार–विमर्श के उपरांत अच्छी निर्माण प्रक्रियाओं के मानक स्थापित करने के बारे में आम राय स्थापित की जानी चाहिए। इन मानकों को फिर दवा एवं सौंदर्य प्रसाधन अधिनियम की अनुसूची 'एम' में शामिल किया जा सकता है।
7. उपभोक्ताओं को संदेहास्पद दवाओं को सरकार द्वारा अनुमोदित प्रयोगशालाओं में जाँच कराने की अनुमति होनी चाहिए।
8. दवा की सभी दुकानों में प्रशिक्षित फार्मासिस्ट की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त संख्या में नए फार्मेसी कॉलेज स्थापित किए जायें।
9. चमत्कारिक उपचार अधिनियम के स्थान पर एक नया अधिनियम लागू किया जाना चाहिए।
10. दवाओं के बारे में सही और उचित जानकारी प्रदान करने के लिए सरकार को चाहिए कि वह एक स्वतंत्र प्रक्रिया विकसित करे। राष्ट्रीय दवा फार्मुल्युरी में नवीन जानकारियाँ सम्मिलित कर नियमित रूप से इसे प्रकाशित किया जाना चाहिए। प्रत्येक स्तर पर स्वास्थ्य केन्द्रों के लिए मानक उपचार विधियाँ और सामान्य रोगों के उपचार के दिशा–निर्देश जारी किए जायें। डॉक्टरों, फार्मासिस्ट और स्टॉफ नर्सों को इन उपचार पद्धतियों और दिशा–निर्देशों के बारे में प्रशिक्षित किया जाए। सभी अस्पतालों और चिकित्सा केन्द्रों को अपने स्वयं के दवा फार्मूले तैयार एवं प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

दवाओं को प्रोत्साहन

1. दवाओं को प्रोत्साहन देने के सभी प्रयासों की मॉनीटरिंग के लिए राष्ट्रीय नैतिकता समिति (एनईसीपीएम) की स्थापना होनी चाहिए। जिसमें सामाजिक संगठनों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त हों।
2. राष्ट्रीय नैतिक दवा प्रोत्साहन समिति दवाओं के विपणन के बारे में नियमों और नैतिकताओं की सूची तैयार करे और प्रत्येक निर्माता द्वारा इसका पालन अनिवार्य हो।
3. दवाओं को बढ़ावा देने के उद्देश्य से चिकित्सकों को उपलब्ध कराये जाने वाली सभी प्रकार की सामग्री की जाँच राष्ट्रीय नैतिकता समिति द्वारा की जाए और क्षेत्रीय मीडिया में दवाओं के सभी विज्ञापनों को राज्य स्तरीय नैतिक दवा प्रोत्साहन समिति द्वारा अनुमोदित किया जाए।

4. सामान्य प्रोत्साहन वस्तुओं को छोड़ महंगे उपहार, बैठकों को प्रायोजित करने तथा दवायें देने या इनकी खरीद से संबंधित चिकित्सकों को दवा कंपनियों द्वारा लाभ पहुँचाने की सभी गतिविधियों पर प्रतिबंध लगा दिया जाना चाहिए जिससे वे दवायें लिखने की प्रक्रिया को प्रभावित न कर सकें।
5. चिकित्सकों के लिए लगातार चलाये जाने वाले चिकित्सा शिक्षा कार्यक्रम हेतु दवा कंपनियाँ दवा नियंत्रण प्राधिकरण को अंशदान दें।
6. दवा कंपनियों द्वारा दवाओं को प्रोत्साहन देने की गतिविधियों पर किए जाने वाले खर्च की अधिकतम सीमा निर्धारित हो और इसका पालन सुनिश्चित किया जाए।

दवा प्रचारक

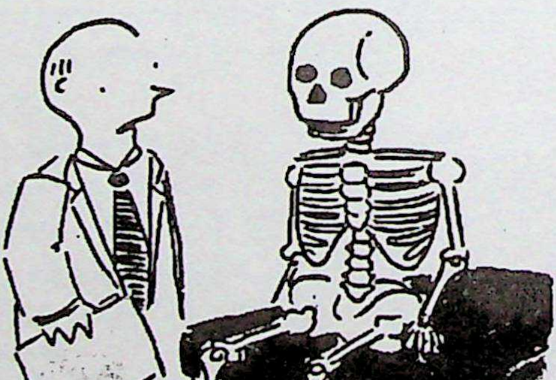

अभी भी निदान पक्का करने के लिए
एक एक्स-रे कर लेते है।

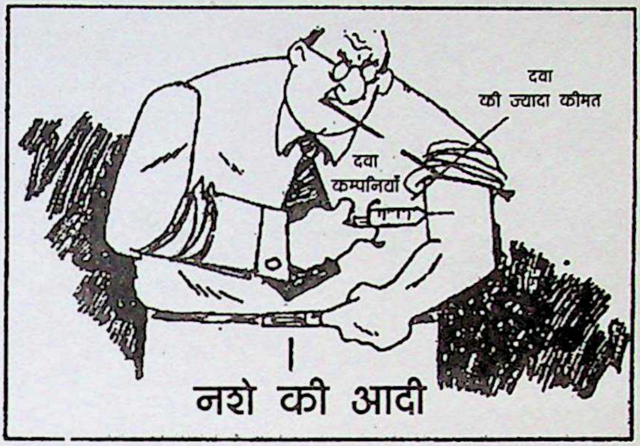
दवा
की ज्यादा कीमत
दवा
कम्पनियाँ
नशे की आदी

फार्मेसी
यह दवा खाना खाने के पूर्व दिन में दो बार लेनी है।
यह दवा आपको इन दवाइयों की कीमत बताने के तुरन्त बाद लेनी है।

जन स्वास्थ्य अभियान
राष्ट्रीय समन्वय समिति,

द्वारा साथी-सेहत, 3 एवं 4, अमन टेरेस
प्लाट नं. 140, धनुकर कॉलोनी कोठरूद
पुणे-411029
फोन : +91-20-25451413/25452325
ई-मेल : cehatpun@vsnl.com

द्वारा देहली विज्ञान फोरम, डी-158,
लोवर ग्राउण्ड फ्लोर, साकेत, न्यू देहली-110017
फोन : +91-11-26524324/26862716
ई-मेल : ctaddsf@vsnl.com